वनस्पति जगत में ताक-झाँक - 2

फूल से बीज तक

किशोर पँवार

एकलव्य का प्रकाशन

वनस्पति जगत् में ताक-झाँक – 2

फूल से बीज तक

किशोर पँवार

एकलव्य का प्रकाशन

वनस्पति जगत् में ताक-झाँक – 2

फूल से बीज तक

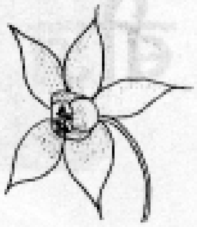

PHOOL SE BEEJ TAK

लेखकः किशोर पँवार
विषय सलाहकारः भोलेश्वर दुबे
शृंखला सम्पादकः सुशील जोशी
चित्रः भारत जमरा
फोटोः किशोर पँवार
आवरण फोटोः शुभ्रा भावसार

© किशोर पँवार एवं एकलव्य, जनवरी 2011
इस किताब के किसी भी भाग का गैर-व्यावसायिक शैक्षणिक उद्देश्य से कॉपीलेफ्ट चिह्न के तहत उपयोग किया जा सकता है। स्रोत के रूप में किताब का उल्लेख अवश्य करें तथा एकलव्य को सूचित करें। किसी भी अन्य प्रकार की अनुमति के लिए एकलव्य के मार्फत लेखक से सम्पर्क करें।

संस्करणः जनवरी 2011/ 3000 प्रतियाँ
ISBN: 978-81-89976-78-1
मूल्यः ₹ 60.00

कागज़ः 70 gsm मेपलिथो और 200 gsm पेपर बोर्ड (कवर)
पराग इनिशिएटिव, सर रतन टाटा ट्रस्ट के वित्तीय सहयोग से विकसित

प्रकाशकः **एकलव्य**
ई-10, शंकर नगर बीडीए कॉलोनी
शिवाजी नगर, भोपाल - 462 016 (म.प्र.)
फोनः (0755) 2671017, 2551109 फैक्सः (0755) 2551108
www.eklavya.in
सम्पादकीयः books@eklavya.in
किताबें मँगवाने के लिएः pitara@eklavya.in

मुद्रकः मुद्रकः आदर्श प्राइवेट लिमिटेड, भोपाल, फोनः (0755) 255 5442

कहाँ - क्या

भूमिका 4

खण्ड 1: खोज का इतिहास

पौधों में प्रजननः ऐतिहासिक सन्दर्भ 7

प्रजनन के साथ छेड़छाड़ का सफर 12

खण्ड 2: फूल तरह-तरह के

कैसे बनता है फूल? 20

भूमिगत फूल 22

भँवरे ने खिलाए फूल 24

फूल की पहचान तो पंखुड़ियाँ ही हैं 29

खण्ड 3: सफलता की युक्तियाँ

जब न हों पंखुड़ियाँ! 34

फूलों ने पहना ताज 36

फूलों में रंग और गन्ध के रसायन 41

गन्ध तो गन्ध, दुर्गन्ध भी लुभाती है 44

हंसलताः परागण के लिए धोखाधड़ी 49

पंखुड़ियों से बने लैण्डिंग प्लेटफॉर्म 51

छुपे मकरन्द के पथ प्रदर्शक - हनी गाइड 56

एक फूल, एक रसिया 62

पराग कणों का हवाई सफरनामा 64

खण्ड 4: बीज यात्रा

विस्फोटक वनस्पतियाँ 70

बिना बीज के फल 75

नारियल का बीज 79

खण्ड 5: बगैर बीज वंशवृद्धि

बिना बीज के उगते पौधे 82

काँच के बरतनों में पौधों की क्यारियाँ 87

भूमिका

जीवों की एक विशेषता उनका जीवन चक्र है। इस चक्र में जन्म और मृत्यु के बीच की कड़ियाँ हैं – वृद्धि, विकास और प्रजनन। प्रत्येक जीव मरने से पहले अपने ही जैसे जीव उत्पन्न करता है या करने की कोशिश करता है। पौधों में भी ऐसा ही होता है। सरल प्रकार के जलीय एवं थलीय पौधों में तीन प्रकार का प्रजनन देखा जाता है – वर्धी, अलैंगिक और लैंगिक।

शैवालों (algae) में उसका तन्तु टूटकर नए तन्तु बना लेता है। ब्रॉयोफाइट्स में पौधे के पिछले हिस्से सड़-गलकर मर जाते हैं और अगले सिरे से दो नए पौधे बन जाते हैं। ये शरीर के अंगों से होने वाले वर्धी प्रजनन (vegetative reproduction) के उदाहरण हैं। फर्न जैसे पौधे अपनी जनन पत्तियों पर बीजाणु (spore) उत्पन्न करते हैं जिनसे नए पौधे बनने की शुरुआत होती है। ऐसी पत्तियाँ बीज पर्ण (sporophyll) कहलाती हैं। समझ लीजिए कि बस यहीं से बीज नामक चीज़ की शुरुआत हुई है। इनसे कुछ विकसित समझे जाने वाले पौधों में असली बीज बनते हैं। बीजाणु अलैंगिक प्रजनन के फलस्वरूप बीजाणुधानियों (sporangia) में बनी एक रचना है। शैवाल जैसी कुछ प्रारम्भिक वनस्पतियों में बीजाणु पूर्णतः अलैंगिक प्रजनन की इकाई है जबकि कुछ वनस्पतियों में बीजाणुओं से लैंगिक प्रजनन की शुरुआत होती है। दूसरी ओर, बीज लैंगिक जनन के फलस्वरूप उत्पन्न एक विशिष्ट रचना है।

बाग-बगीचों में और विशेषकर पहाड़ों पर ऐसे कई पेड़ होते हैं जिनमें बीज तो बनते हैं परन्तु इन पर फूल नहीं खिलते, न ही फल बनते हैं। जैसे चीड़, देवदार, क्रिसमस ट्री और विद्या। इनके लैंगिक प्रजनन अंग फूलों जैसे नाज़ुक, रंगीन और सुगन्धित नहीं होते। इन्हें शंकु (cone) कहते हैं। शंकु शुरू में हरे होते हैं और पकने पर चर्मिल या ठोस लकड़ी जैसे हो जाते हैं। पहाड़ी क्षेत्रों में तो चीड़ और देवदार के शंकुओं को जलाने के

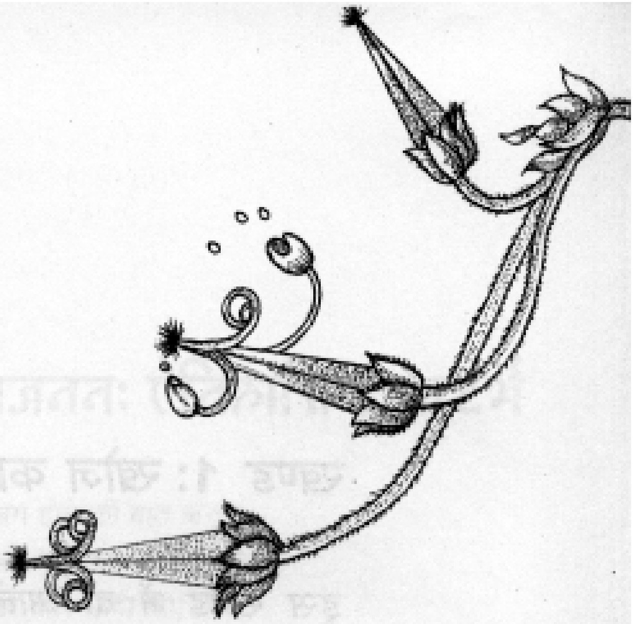

काम में भी लाया जाता है और इनसे सजावटी वस्तुएँ भी बनाई जाती हैं।

हमारे आसपास बगीचों में, खेतों में, सड़कों के किनारे, जंगलों में और घर-आँगन में जो अधिकांश पेड़-पौधे हैं उनमें सुन्दर, रंग-बिरंगे, महकते फूल खिलते हैं। इन पर तरह-तरह की तितलियाँ, कीट-पतंगे और पक्षी मँडराते रहते हैं। दरअसल ये फूल इन पौधों के प्रजनन अंग हैं। इन्हीं से उनमें लैंगिक प्रजनन होता है जिसके परिणामस्वरूप फल और बीज बनते हैं। बीज से पौधा और फिर फूल, फल और फिर बीज... यह सिलसिला यूँ ही चलता रहता है। देखा जाए तो बीज पौधों के बच्चे हैं, अन्तर सिर्फ इतना है कि ये सुप्तावस्था में रहते हैं।

इस पुस्तक में आप फूलों के बनने, खिलने, महकने और फल तथा बीज बनने की प्रक्रिया के इतिहास एवं महत्व के बारे में पढ़ेंगे। पौधों की दुनिया में फूलों की कितनी विविधता है, फूलों का तितलियों से क्या रिश्ता है, वे क्यों मँडराती हैं फूलों पर, भँवरे उनके आसपास क्या गुनगुनाते हैं, पक्षी फूलों में क्यों झाँकते रहते हैं? कैसे देखते-देखते फूल फल में बदल जाता है और उसमें भरे बीजाण्ड (ovules) बीज में बदल जाते हैं? इसके अलावा कुछ बात हम अलैंगिक प्रजनन की भी करेंगे।

पौधों में प्रजनन के साथ इन्सानी छेड़छाड़ का सफरनामा भी आप यहाँ देख पाएँगे। कलम लगाने से लेकर पौधों का संकरण, बीज रहित फलों का निर्माण और पौधे के किसी भी अंग से मात्र कुछ कोशिकाएँ लेकर उनसे हूबहू वैसा ही पौधा बनाने की ऊतक संवर्धन (tissue culture) की नवीनतम तकनीक की झलक भी इसमें आप पाएँगे। फूल, फल और बीजों की अनोखी दुनिया की एक दास्तान है यह पुस्तक *फूल से बीज तक*।

खण्ड 1: खोज का इतिहास

इस खण्ड में दो आलेख शामिल हैं। इनका सम्बन्ध वनस्पति जगत में प्रजनन की खोज के इतिहास से है। यह सोचकर आश्चर्य होता है कि एक ओर तो इन्सान सदियों से पेड़-पौधों की प्रजनन क्रिया पर नियंत्रण के ज़रिए लाभ उठा रहे थे, वहीं प्रजनन क्रिया की व्यवस्थित जानकारी हमें अधिक से अधिक दो-ढाई सदी पूर्व ही मिल पाई है। नई-नई जानकारी के साथ पादप प्रजनन पर नियंत्रण व मनचाहे पेड़-पौधे तैयार करने के काम में भी गति आई। पारम्परिक संकरण से आगे बढ़कर आज हम टिशू कल्चर, सोमेटिक हायब्रिडायज़ेशन जैसी जीन ट्रांसफर की उन्नत तकनीकों का उपयोग कर रहे हैं।

पौधों में प्रजननः ऐतिहासिक सन्दर्भ

एक ज़माना था जब पौधों में किसी भी प्रकार के लिंग होने की बात करना तक अनुचित माना जाता था। इसे साबित करना तो दूर, यह सोचना भी बड़ा मुश्किल था कि पौधों में भी हमारी ही तरह नर और मादा पाए जाते हैं तथा बीज बनने के लिए नर और मादा का मिलन ज़रूरी होता है। उस समय के महान दार्शनिक और प्रकृति विज्ञानी तक पौधों में लिंग की उपस्थिति को नहीं जान पाए थे। कुछ ने तो काफी हास्यास्पद बातें भी कहीं। जैसे, फूल के पुंकेसर जन्तुओं की गुदा के समान हैं, जहाँ से उत्सर्जी पदार्थ पराग कणों के रूप में निकलता है।

खैर, आज तो सभी जानते हैं कि प्रकृति को अपनी अनोखी छटा से सजाने-सँवारने वाले रंग-बिरंगे फूल पौधों के प्रजनन अंग हैं। इनमें नर और मादा भाग एक ही फूल पर या अलग-अलग फूलों पर भी हो सकते हैं। खजूर, ताड़ और पपीते जैसे कुछ पेड़-पौधों में तो नर और मादा पेड़ ही अलग-अलग होते हैं। जब हवा या अन्य साधन द्वारा नर पेड़ों पर लगे फूल से पराग कण मादा फूल तक लाए जाते हैं तभी निषेचन होता है। निषेचित फूल से फल एवं बीज बनते हैं।

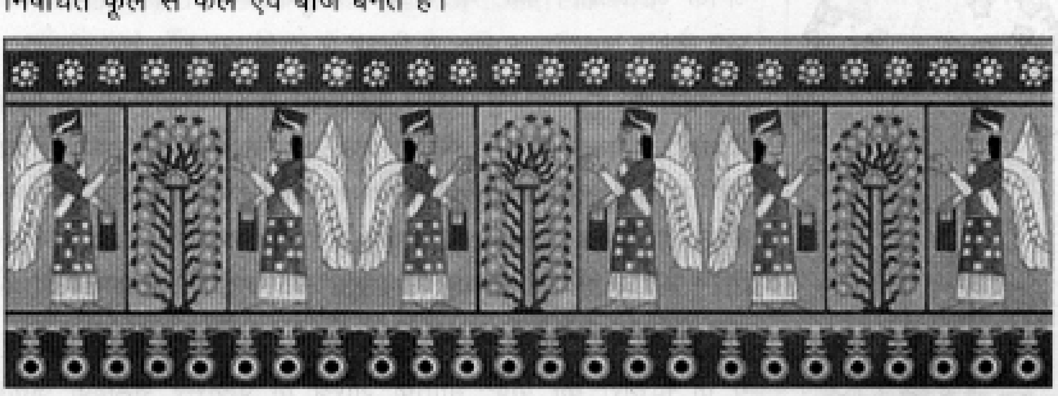

खजूर के पेड़ों का परागण करता एक सीरियाई (885-860 ईसा पूर्व)

शहतूत का पुष्पक्रम

रूस के प्रसिद्ध कोशिका विज्ञानी सर्जियस नवाश्चिन (Sergius Nawaschin) ने 1898 में फूलधारी पौधों के प्रजनन में नर युग्मकों की भूमिका की महत्वपूर्ण खोज की थी। पौधों में प्रजनन की हमारी जानकारी किस तरह धीरे-धीरे आगे बढ़ी, आइए इस पर एक सिलसिलेवार नज़र डालें।

प्रकृति विज्ञान की बात हो और यूनान के महान दार्शनिक अरस्तू (Aristotle) का ज़िक्र न हो, यह मुमकिन नहीं। उनके अनुसार पौधे में नर व मादा घुले-मिले रहते हैं और अपनी मर्ज़ी से नर या मादा बन जाते हैं। नए पौधे उनके शरीर में जमा अतिरिक्त भोजन से पैदा होते हैं। अरस्तू के प्रिय शिष्य और वनस्पति विज्ञान के जनक कहे जाने वाले थियोफ्रास्टस (Theophrastus) भी पौधों में लिंग की उपस्थिति का पता नहीं लगा पाए थे। अलबत्ता, ईसा पूर्व तीसरी सदी में लिखी अपनी एक पुस्तक *इंक्वायरी इनटू प्लांट्स* में उन्होंने अरबी और सीरियाई लोगों के एक रिवाज़ का ज़िक्र किया है। इसमें प्रतिवर्ष एक निश्चित दिन एक व्यक्ति खजूर के नर पेड़ पर चढ़कर उसका पुष्पक्रम तोड़कर उसे पुजारी को देता था। पुजारी उसे मादा खजूर के पुष्पक्रम से छुआता था। माना जाता था कि इससे खजूर की भरपूर फसल आएगी। इससे इतना तो स्पष्ट है कि उस समय भी लोग खजूर के दो तरह के पेड़ों के अस्तित्व को जानते थे।

पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के वैज्ञानिकों ने तो पौधों में किसी भी प्रकार के नर-मादा मिलन की सम्भावनाओं से इन्कार कर दिया था। उस समय इनका ज़िक्र तक अश्लील व अक्षम्य माना जाता था। सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध वनस्पति शास्त्री व आधुनिक वंश संकल्पना के जनक जोसेफटोर्न फोर्ट भी पौधों में लैंगिक प्रजनन को नहीं पहचान पाए थे।

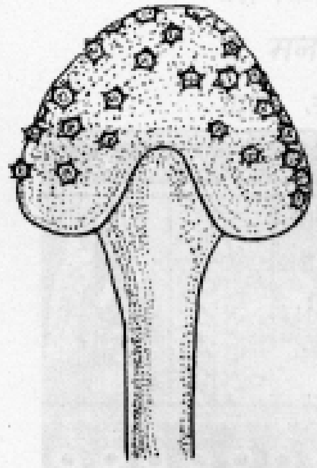

फूल की वर्तिका के सिरे पर चिपके पराग कण

बिल्लोरी काँच (लेंस) और सरल सूक्ष्मदर्शी के आविष्कार से इस दिशा में थोड़ी अधिक जानकारी मिली। 1682 में एक अँग्रेज़ वनस्पति शास्त्री नेहेमिया ग्रू (Nehemiah Grew) (1641-1712) ने सर्वप्रथम पुंकेसरों को नर जनन अंग माना। उनका कहना था कि पराग कणों के मादा भाग पर गिरने से एक "विशेष पदार्थ" अण्डाशय तक जाता है जो अण्डाशय को फल में बदल देता है।

ग्रू के विचारों की पुष्टि भौतिक शास्त्र के प्रोफेसर रुडॉल्फ जेकब केमेरारियस (Rudolph Jacob Camerarius) ने 1694 में की। उन्होंने

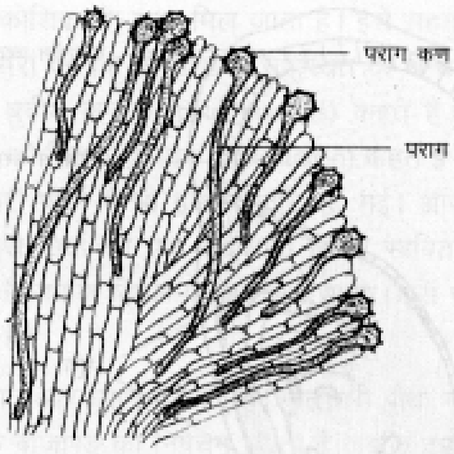

वर्तिका के सिरे पर अंकुरित होते पराग कण

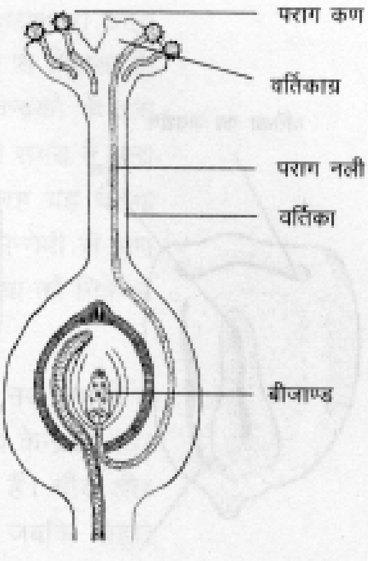

अण्डाशय में प्रवेश करती पराग नली

स्पष्ट किया कि शहतूत में परिपक्व जनन योग्य बीज बनने के लिए मादा शहतूत के आसपास नर पेड़ होना ज़रूरी है। नर की अनुपस्थिति में अपरिपक्व बीज बनते हैं। केमेरारियस ने फूल, पराग कोश, पराग कण और बीजाण्ड का विस्तृत अध्ययन किया। अपनी खोजों के निष्कर्ष के रूप में उन्होंने बताया कि वनस्पति जगत में बीजों का बनना प्रकृति की विशिष्ट देन है और वंश को बनाए रखने का साधन है।

निषेचन में पराग कणों की भूमिका अट्ठारहवीं सदी तक स्पष्ट नहीं हो पाई थी। इस दिशा में इटली के प्रसिद्ध गणितज्ञ और खगोलशास्त्री जी.बी. अमीची (G.B. Amici) (1824) की खोज महत्वपूर्ण साबित हुई।

कई अन्य खोजों की तरह पराग नली की खोज भी अकस्मात ही हुई थी। अपने सूक्ष्मदर्शी से एक दिन खट्टी भाजी (*पोर्चुलेका ओलिरेसिया*) के वर्तिकाग्र को देखते वक्त अमीची ने पाया कि एक पराग कण वर्तिकाग्र के रोमों पर चिपका हुआ है। वे उसे लगातार देखते रहे। उस पराग कण के फटने पर उसमें से निकलती एक नली ने उन्हें आश्चर्यचकित कर दिया। वह नली

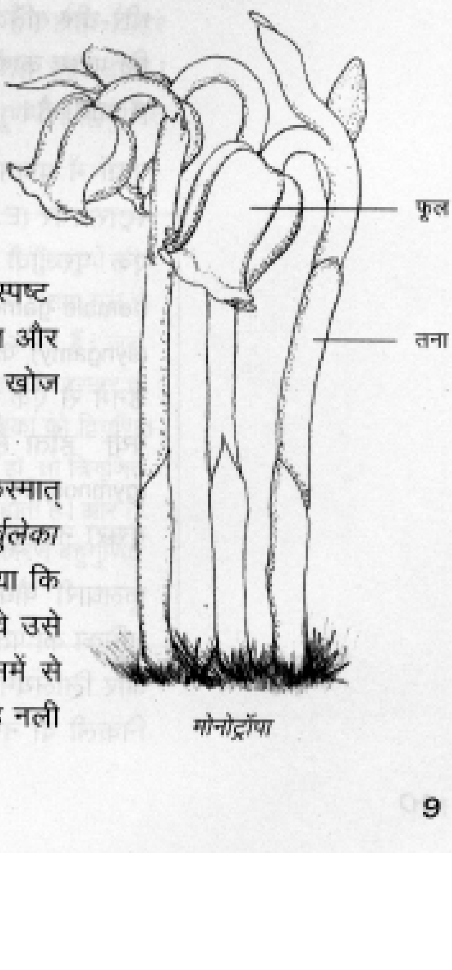

मोनोट्रॉपा

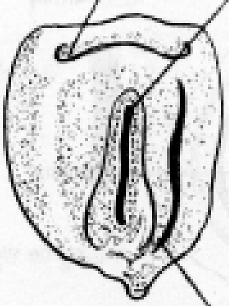

मक्का का बीज

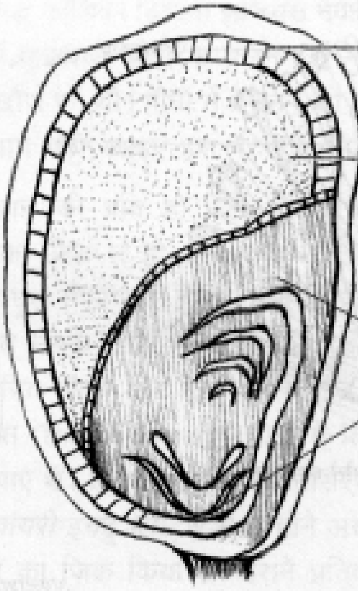

मक्का के बीज की खड़ी काट

धीरे-धीरे वर्तिका में आगे बढ़ती गई। 1830 में उन्होंने पक्के तौर पर कहा कि पराग कणों से निकलने वाली पराग नली अन्ततः बीजाण्ड के सम्पर्क में आती है।

पौधों में प्रजनन को लेकर एक और महत्वपूर्ण जानकारी 1884 में ई. स्ट्रासबर्गर (E. Strasburger) ने दी। उन्होंने पहली बार मोनोट्रॉपा नामक एक परजीवी पौधे में नर युग्मक (male gamete) का मादा युग्मक (female gamete) के साथ मिलन देखा। यह प्रक्रिया सहयुग्मन (syngamy) कहलाई। एक पराग नली से दो नर युग्मक निकलते हैं। उनमें से एक तो बीजाण्ड से मिल जाता है परन्तु दूसरे नर युग्मक का क्या होता है इसका पता अभी तक नहीं चला था। नग्नबीजी पेड़ों (gymnosperms, जैसे चीड़ और देवदार) के बारे में पता था कि इनमें दूसरा नर युग्मक नष्ट हो जाता है।

फूलधारी पौधों (angiosperms) के निषेचन में दूसरे नर युग्मक की भूमिका का पता 1898 में रूसी वैज्ञानिक सर्जियस नवाश्चिन ने फ्रिटीलेरिया और लिलियम नामक पौधों में लगाया। उन्होंने बताया कि पराग नली से निकली दो नर कोशिकाओं में से एक का केन्द्रक बीजाण्ड में उपस्थित

अण्ड कोशिका के साथ मिल जाता है। इसे सहयुग्मन (syngamy) कहते हैं। दूसरा केन्द्रक बीजाण्ड में उपस्थित दो अन्य केन्द्रकों से मिलता है, जिन्हें ध्रुवीय केन्द्रक (polar nucleus) कहते हैं। तीन केन्द्रकों के इस मिलन को तिहरा संलयन (triple fusion) कहते हैं। कुछ ही समय में अन्य फूलधारी पौधों में भी इसकी पुष्टि हो गई। और इस तरह यह घटना फूलधारी पौधों का एक सर्वव्यापी लक्षण साबित हुई। सिन्गेमी से भ्रूण बनता है जबकि ट्रिपल फ्यूज़न से भ्रूणपोष। इस पूरी प्रक्रिया को निषेचन कहते हैं।

एक बात और ध्यान देने की है। फूलधारी पौधों में बने दो नर युग्मकों में से एक बीजाण्ड का निषेचन करता है जबकि दूसरा ध्रुवीय केन्द्रकों का। इसलिए इसे दोहरा निषेचन (double fertilization) कहते हैं। चीड़ और देवदार जैसे नग्नबीजी पौधों में एकल निषेचन होता है जबकि दोहरा निषेचन फूलधारी पौधों का लाक्षणिक गुण है। दोहरे निषेचन के फलस्वरूप भ्रूणपोष बनता है जो भ्रूण के पोषण का साधन है।

उपरोक्त विवरण से लगता है कि ट्रिपल फ्यूज़न से बनने वाला केन्द्रक और उससे बनने वाला भ्रूणपोष त्रिगुणित ही होगा। मगर एक चौथाई फूलधारी पौधों में दो से अधिक ध्रुवीय केन्द्रक देखे गए हैं। अतः दोहरे निषेचन के फलस्वरूप बनने वाला ऊतक हमेशा त्रिगुणित नहीं होता। ध्रुवीय केन्द्रकों की संख्या 1-14 तक देखी गई हैं। अतः भ्रूणपोष द्विगुणित से लेकर बहुगुणित तक हो सकता है।

> किसी भी प्रजाति की सामान्य कायिक (somatic) कोशिकाओं में गुणसूत्रों की एक निश्चित संख्या होती है। जब युग्मक बनते हैं तो गुणसूत्रों की संख्या मूल से आधी रह जाती है। ऐसे केन्द्रक को अगुणित (haploid = N) कहते हैं। जब युग्मकों का मिलन होता है तो गुणसूत्रों की संख्या पुनः मूल संख्या के बराबर हो जाती है, जो युग्मकों से दुगनी होती है। ऐसे केन्द्रक वाली कोशिका को द्विगुणित (diploid = 2N) कहते हैं। यदि तीन अगुणित केन्द्रकों का मिलन हो, तो त्रिगुणित (triploid = 3N) कोशिका बनती है। भ्रूणपोष बनते समय ऐसा ही होता है। और तो और, कभी तो बड़ी तादाद में ध्रुवीय केन्द्रकों की उपस्थिति के कारण बहुगुणित (polyploid) भ्रूणपोष बनता है।

प्रजनन के साथ छेड़छाड़ का सफर

प्रजनन के मामले में मनुष्य द्वारा जीवों से छेड़छाड़ काफी लम्बे समय से जारी है। पूर्व में दो अलग-अलग प्रजातियों के जीवों के मिलन से संकर जीव बनाए जाते थे। जैसे घोड़े और गधे के बीच प्रजनन होने से खच्चर बनता है। इसमें दोनों के गुण होते हैं। इसी तरह फसलों की कई उन्नत किस्में भी संकरण का परिणाम हैं। देश-विदेश के कई वैज्ञानिक संस्थान इसी काम में लगे हैं। हमारे यहाँ भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान (IARI) के कई केन्द्र यह कार्य देश के विभिन्न स्थानों पर कर रहे हैं। फसलों की रोग-प्रतिरोधी तथा सूखा-प्रतिरोधी किस्में इसी प्रक्रिया का नतीजा हैं। तथाकथित हरित क्रान्ति और श्वेत क्रान्ति प्रजनन के साथ छेड़छाड़ का ही परिणाम है। वैसे गौरतलब बात यह है कि गधे और घोड़े के बीच संकरण वास्तव में दो अलग-अलग प्रजातियों के बीच प्रजनन का नतीजा है जबकि फसलों में आमतौर पर एक ही प्रजाति (जैसे गेहूँ) की अलग-अलग किस्मों के बीच संकरण कराया जाता है। अलग-अलग प्रजातियों के बीच संकरण से उत्पन्न सन्तान अक्सर वन्ध्य होती है।

नॉर्मन बोर्लाग

पौधों के साथ ऐसे प्रयोग सैकड़ों सालों से हो रहे हैं। नॉर्मन बोर्लाग (Norman Borlaug) इसी वजह से प्रसिद्ध हुए। मेंढक, चूहों व बन्दरों जैसे जन्तुओं के साथ भी ऐसे प्रयोग होते रहे हैं। मगर अब स्तर बदल गए हैं। पहले इस काम के लिए जीवों का मिलन करवाना ज़रूरी था। फिर आई कृत्रिम गर्भाधान की तकनीक जो परखनली शिशु तक पहुँच गई। आज कई परखनली शिशु हमारे आसपास अपने जवाँ अन्दाज़ में मौजूद हैं।

इसी तरह पौधों में संकरण के लिए पहले पराग कणों को पौधे के मादा भाग (वर्तिकाग्र) पर डालना पड़ता था ताकि निषेचन

हो सके। अब यह क्रिया परखनली में करवाई जाती है। और तो और, पौधों में तो परखनली के अन्दर ही भ्रूण का पूर्ण विकास होकर नया पौधा बन जाता है।

यहाँ तक तो सब ठीक है क्योंकि इनमें लैंगिक जनन कोशिकाओं का ही प्रयोग होता है — संकरण हेतु नर युग्मकों (शुक्राणु) व मादा युग्मकों (अण्डाणु) को मिलाया जाता है और निषेचन होता है। यानी निषेचन जैसे भी हो, होता ज़रूर है। परन्तु क्लोनिंग द्वारा तैयार भेड़ डॉली के सन्दर्भ में तो बिना निषेचन के ही प्रजनन हो गया था। यही इसकी प्रमुख विशेषता है। इसमें एक वर्धी (यानी सोमेटिक कोशिका) का केन्द्रक लेकर एक केन्द्रक विहीन अण्ड कोशिका में प्रविष्ट करवाया गया और उससे सन्तान का विकास किया गया।

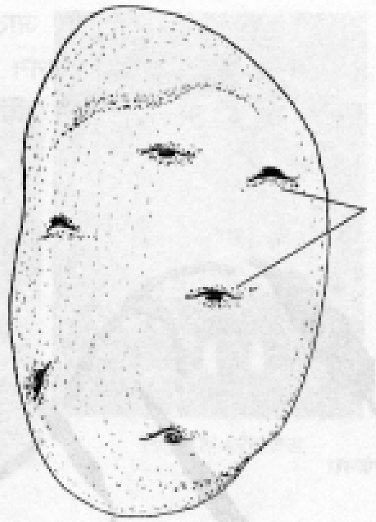

आलू की आँखें

अंग क्लोनिंग से जीन क्लोनिंग तक

क्लोनिंग आखिर क्या है? इसे गन्ने या आलू की खेती का उदाहरण लेकर समझा जा सकता है। आलू के आँख वाले हिस्से को टुकड़े करके एक आलू से तीन-चार आलू के नए पौधे उगाना क्लोनिंग का ही उदाहरण है। आँख यानी वर्धी कलिका जो विकसित होकर एक शाखा या नए पौधे को जन्म देती है। एक आलू या गन्ने से उत्पन्न सभी पौधे आनुवंशिक रूप से एक समान होते हैं। अतः इन्हें क्लोन कहा जाता है। क्लोन एक यूनानी शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है शाखा। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि क्लोन ऐसे जीवों का समूह है जो एक ही पूर्वज से समसूत्री विभाजन (मायटोसिस) के फलस्वरूप जन्मे हों।

परन्तु जब आलू या गन्ने के बीज से नए पौधे तैयार किए जाते हैं तब वे क्लोन नहीं होते क्योंकि लैंगिक प्रजनन की क्रिया के फलस्वरूप बने बीजों में आनुवंशिक सामग्री (जीन) का आदान-प्रदान व पुनर्मिलन होने से हमेशा नए संयोग बनते हैं। अतः हर बार कुछ न कुछ बदलाव आ जाता है जिससे विविधता आती है, जो जीवों का प्राकृतिक गुण है। परन्तु क्लोनिंग में ऐसा नहीं होता। आलू को सदियों से क्लोनिंग के द्वारा ही उगाया जा रहा है। और तो और, बीजों द्वारा उगाए

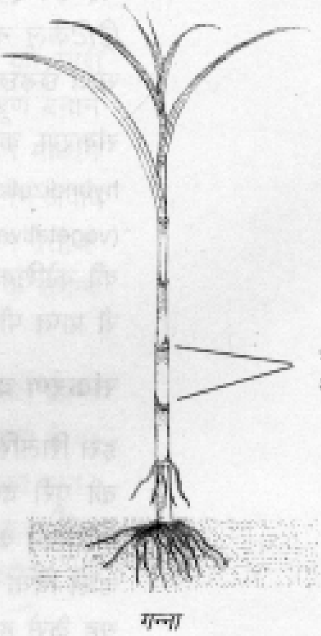

गन्ना

गए आलू व्यापारिक दृष्टि से हल्की किस्म के होते हैं क्योंकि लैंगिक प्रजनन के फलस्वरूप उत्पन्न नए संयोग तात्कालिक लाभ एवं गुणवत्ता की दृष्टि से उपयुक्त नहीं होते।

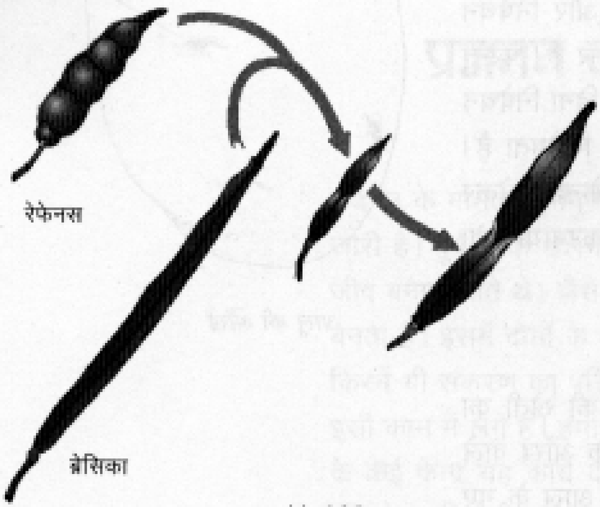

संकरण: लैंगिक और कायिक

संकरण लैंगिक प्रजनन का ही एक रूप है। प्रकृति में भी यह यदा-कदा होता रहता है जिसके फलस्वरूप नई किस्में बनती हैं। दो भिन्न किस्मों के बीच कृत्रिम रूप से निषेचन करवाने से भी संकर किस्में तैयार होती हैं। इस विधि में नर व मादा का चुनाव मनुष्य उनके गुणों के आधार पर करता है। आज प्रचलित कई उन्नत फसलें व दुधारू पशु इसी तरह बनाए गए हैं।

इस विधि द्वारा पौधों की कुछ एकदम नई प्रजातियाँ भी तैयार की गई हैं। मसलन मूली *(रेफेनस)* और गोभी *(ब्रेसिका)* के संकरण से एक नई प्रजाति *रेफेनोब्रेसिका* तैयार की गई है। इसी तरह राई *(सीकेल)* तथा गेहूँ *(ट्रिटिकम)* के संकरण से *ट्रिटिकेल* नाम का एक नया अनाज बनाया गया है। ये सब प्रजनन के साथ छेड़छाड़ के उदाहरण हैं।

संकरण का ज़्यादा विकसित तरीका है कायिक संकरण (somatic hybridization)। इसमें नर व मादा जनन कोशिकाओं की बजाय दो वर्धी (vegetative) कोशिकाओं को मिलाया जाता है। अलग-अलग प्रजातियों की कोशिकाओं का प्रयोगशाला में संकरण कराया जाता है। इस विधि से प्राप्त पौधे साइब्रिड (cybrid) कहलाते हैं।

संकरण का एक नया कदम

इस सिलसिले में जीनोम क्लोनिंग की तकनीक सबसे आगे है। यहाँ पूरी की पूरी वर्धी कोशिका का संलयन (fusion) करवाने की बजाय एक कोशिका का केन्द्रक हटाकर उसमें किसी दूसरी कोशिका का केन्द्रक डाल दिया जाता है। डॉली जीनोम क्लोनिंग का एक उदाहरण है। देखें यह कैसे हुआ।

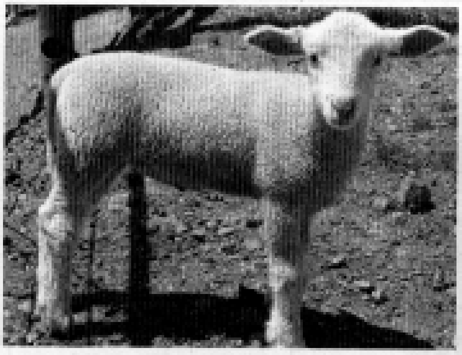

फिनडॉरसेट

डॉली

स्कॉटिश ब्लैकफेस

सर्वप्रथम फिनडॉरसेट किस्म की भेड़ के थन से कायिक कोशिका निकालकर इसे संवर्धित किया गया – यानी इसका कल्चर बनाया गया।

दूसरी ओर, एक स्कॉटिश ब्लैकफेस भेड़ से एक अनिषेचित डिम्ब कोशिका को लेकर इसका केन्द्रक बाहर निकाल दिया गया।

अगले चरण में दोनों कोशिकाओं को मिलाया गया। इस तरह तैयार नई संकर कोशिका में दोनों कोशिकाओं का कोशिका द्रव्य (cytoplasm) और फिनडॉरसेट का केन्द्रक (डी.एन.ए.) था।

ब्लैकफेस की डिम्ब कोशिका के कोशिका द्रव्य में भ्रूण बनाने की सारी जानकारी होती है। अतः यह नई कोशिका विभाजित होकर भ्रूण बनाने लगती है। छह दिन बाद विकसित हो रहे इस भ्रूण को संवर्धन माध्यम से हटाकर ब्लैकफेस के गर्भ में प्रत्यारोपित कर दिया जाता है। गर्भ अवधि पूर्ण होने पर ब्लैकफेस भेड़ एक शिशु फिनडॉरसेट भेड़ को जन्म देती है जो आनुवंशिक रूप में अपनी दाता कोशिका फिनडॉरसेट भेड़ के समान है, उसकी प्रतिकृति है, उसका क्लोन है।

यहाँ पर फिनडॉरसेट के जीनोम (डी.एन.ए.) को ब्लैकफेस की डिम्ब कोशिका में क्लोन कर दिया गया है। किसी भी जीव की कोशिका में दो चीज़ें बड़ी महत्व की होती हैं – पहला केन्द्रक व दूसरा कोशिका द्रव्य। केन्द्रक के महत्व का पता हमें डॉली के उदाहरण से ही लग गया है - जैसा केन्द्रक वैसी भेड़ (फिनडॉरसेट का केन्द्रक हो तो ब्लैकफेस की डिम्ब कोशिका फिनडॉरसेट जैसी भेड़ को ही जन्म देती है)।

एसिटाबुलेरिया – जैसा केन्द्रक वैसी टोपी

कोशिका द्रव्य और केन्द्रक के तुलनात्मक महत्व का अध्ययन बर्लिन स्थित मैक्स प्लैन्क समुद्री जीव विज्ञान संस्थान के जे. हेमरलिंग (J. Hammerling, 1953) ने विस्तृत रूप से किया है।

हेमरलिंग ने एक समुद्री काई ऐसिटाबुलेरिया को चुना। इसका शरीर 2.5 से.मी. से 5 से.मी. तक लम्बी एक ही कोशिका का बना होता है। इसे स्पष्ट रूप से टोपी, डण्ठल और आधार भागों में बाँटा जा सकता है। ये एक ही कोशिका के अलग-अलग भाग हैं। इसकी एक खासियत यह है कि जब इसकी टोपी काट दी जाती है तो इस पर पुनः एक नई टोपी आ जाती है। ऐसिटाबुलेरिया की अलग-अलग प्रजातियों में अलग-अलग आकार-प्रकार की टोपियाँ मिलती हैं। जैसे *एसिटाबुलेरिया मेडिटेरेनिया* प्रजाति की टोपी गोलाकार होती है जबकि *एसिटाबुलेरिया क्रेन्यूलेटा* की टोपी खाँचेदार होती है।

हेमरलिंग ने अपने पहले प्रयोग में *एसिटाबुलेरिया मेडिटेरेनिया* का केन्द्रक निकालकर उसे *एसिटाबुलेरिया क्रेन्यूलेटा* की कोशिका में डाल दिया, जिसकी टोपी काट दी गई थी। हेमरलिंग जानना चाहते थे कि इस संयुक्त कोशिका, जिसमें *क्रेन्यूलेटा* का कोशिका द्रव्य और *मेडिटेरेनिया* का केन्द्रक था, के पुनर्निर्माण से कैसी टोपी आती है। नतीजा बिलकुल साफ था – इस पर *क्रेन्यूलेटा* जैसी खाँचेदार टोपी आई।

इससे यह बात स्पष्ट हो गई कि कोशिका विभेदन कोशिका द्रव्य द्वारा नियंत्रित होता है। परन्तु हेमरलिंग इस प्रयोग से सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने इस टोपी को भी काट दिया। अब जो नई टोपी आई वह दोनों जातियों के बीच के प्रकार की थी। उन्होंने एक बार फिर इस टोपी को हटा दिया। तीसरी टोपी *मेडिटेरेनिया* जैसी गोल थी। यानी अन्ततः जिसका केन्द्रक उसकी टोपी। ये नतीजे डॉली के मामले में निकले नतीजों जैसे ही हैं – जैसा केन्द्रक वैसा रूप।

इसी तरह के प्रयोग उन्होंने एसिटाबुलेरिया की जातियों में डण्ठल को अदल-बदलकर भी किए। नतीजे दोनों वही थे। (चित्र देखें)

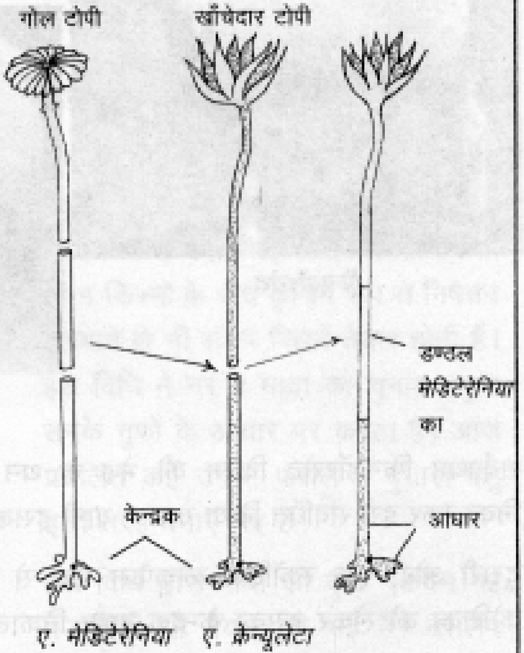

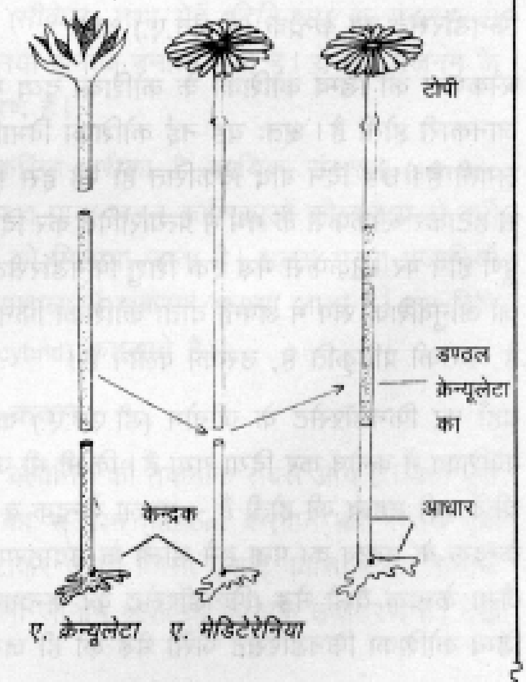

इन प्रयोगों से हेमरलिंग ने नतीजा निकाला कि टोपी को आकार देने वाले पदार्थ, जो क्रेन्यूलेटा के केन्द्रक के प्रभाव से इसके कोशिका द्रव्य में बने थे, वे समाप्त हो गए। और अन्त में इस कोशिका पर पूरा नियंत्रण मेडिटेरेनिया के केन्द्रक का हो गया।

एक अन्य प्रयोग में हेमरलिंग ने एक ही कोशिका में दोनों प्रकार के केन्द्रक रख दिए। इस तरह यह कोशिका एक संकर बन गई। उन्होंने देखा की इस संकर कोशिका पर बार-बार मिले-जुले प्रकार की टोपी ही आती है। इन प्रयोगों से यह साफ हो जाती है कि जीवों के रूप-रंग पर पूरा नियंत्रण केन्द्रक में उपस्थित डी.एन.ए. का ही होता है।

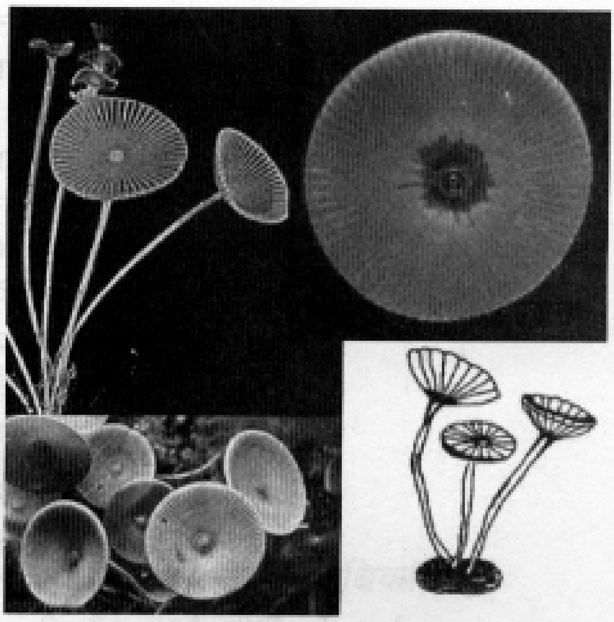

एसिटाबुलेरिया मेडिटेरेनिया

दूसरी महत्वपूर्ण चीज़ है कोशिका द्रव्य। इसमें बहुत सारे रासायनिक पदार्थ, जैसे मेसेंजर आर.एन.ए (जिसे सूचना अणु भी कहा जाता है) तथा प्रोटीन और एन्ज़ाइम रहते हैं। इनके अतिरिक्त इसमें माइटोकॉण्ड्रिया, राइबोसोम और क्लोरोप्लास्ट जैसे कोशिकांग भी पाए जाते हैं। मेसेंजर आर.एन.ए. कोशिका द्रव्य में रहकर केन्द्रक द्वारा निर्देशित सूचनाओं का क्रियान्वयन करते हैं। कोशिका द्रव्य एवं केन्द्रक के महत्व को एक समुद्री शैवाल पर हेमरलिंग (J. Hammerling) द्वारा किए गए बड़े सरल एवं मज़ेदार प्रयोगों से समझा जा सकता है। (देखें बॉक्स)

क्लोनिंग बनाम जैव विविधता

नस्ल सुधार के नाम पर पूर्व में भी जैव विविधता को अपने लाभ हेतु सीमित करने की कोशिशें होती रही हैं। नस्ल सुधार और उन्नत फसलों के निर्माण का मुख्य लक्ष्य उत्पादन क्षमता बढ़ाना ही होता है — दुधारू पशु हो तो दूध की मात्रा, या मांस के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले पशुओं में मांस की मात्रा।

वैसे क्लोनिंग के मामले में एक ही पक्ष देखा गया है और वह है क्लोनों का आनुवंशिक रूप से समान होना। उन पर हो सकने वाले पर्यावरण के प्रभावों को अनदेखा किया गया है। क्लोन पर भी पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है। एक ही जीव के अलग-अलग रूप भी देखने में आते हैं। उदाहरणार्थ फ्रांस में मीठे पानी में रहने वाली सीपियों के अनेक प्रकार मिले हैं। बारीकी से अध्ययन करने पर पता चला कि ये सभी एक ही प्रजाति की सीपियाँ हैं; नदी की धारा या उसकी तली में थोड़ा-सा भी परिवर्तन होने पर इन सीपियों का रूप-रंग बदल जाता है। इसी प्रकार से, *एकिलिया मिलीफोलियम* के एक ही पौधे से अलग किए गए तीन हिस्सों को जब भिन्न-भिन्न ऊँचाइयों पर उगाया गया तो आनुवंशिक रूप से समान होते हुए भी उनका बाहरी रूप बहुत बदल गया।

यही कारण है कि हमारे देश को योजना आयोग ने पन्द्रह विभिन्न कृषि-जलवायु क्षेत्रों में बाँटा है। इनके तहत एक ही किस्म का गेहूँ छह अलग-अलग क्षेत्रों में भिन्न-भिन्न पैदावार देता है जो पर्यावरणीय प्रभाव का परिणाम है।

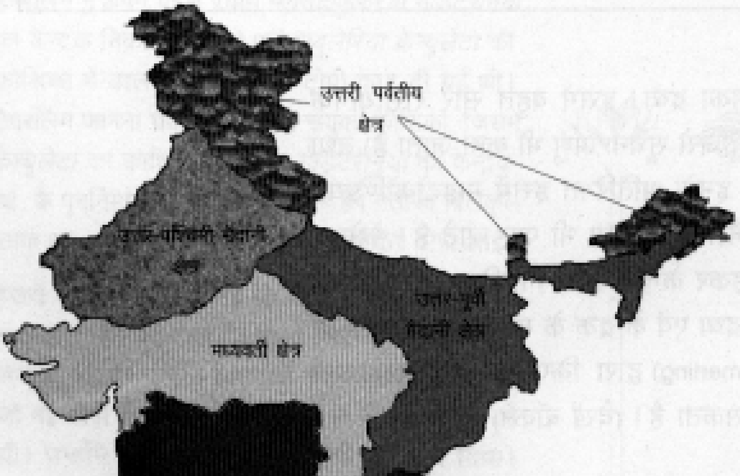

भौगोलिक दृष्टि से भारत छह गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों में विभाजित है।

खण्ड 2: फूल तरह-तरह के

हमारे आसपास पाए जाने वाले अधिकांश पेड़-पौधे फूलधारी हैं। इन्हें एंजियोस्पर्म (आवृतबीजी पौधे) कहते हैं। फूल, जो एक रूपान्तरित तना है, इन पौधों का प्रजनन अंग है। आइए देखें कि फूल क्या होता है, प्रजनन कार्य किस तरह सम्पन्न करता है और इस महत्वपूर्ण काम को अंजाम देने के लिए इसमें किस तरह की व्यवस्थाएँ व विविधताएँ पाई जाती हैं।

कैसे बनता है फूल?

फूलों का निर्माण भी ठीक वैसे ही होता है जैसे नई शाखा और पत्तियों का होता है। अर्थात् वे कलिकाएँ, जिनसे आमतौर पर पत्तियाँ या शाखाएँ बनती हैं, पुष्प कलिका में बदल जाती हैं। सवाल यह है कि क्यों कुछ कलियों से पत्तियाँ और शाखाएँ बनती हैं जबकि कुछ कलियाँ फूलों को जन्म देती हैं। यह कमाल होता कैसे है? कब कलियों से पत्तियाँ और शाखाएँ बनेंगी और कब फूल?

दरअसल एक निश्चित सीमा तक वृद्धि होने के पश्चात ही कोई पौधा फूलना-फलना शुरू करता है। पौधों का इस अवस्था तक पहुँचना 'फूलने के लिए तैयार' अवस्था कहा जाता है। पौधों को उचित प्रकाश अवधि या बहुत कम ताप से गुज़रने पर पता चलता है कि फूलने का समय आ गया है। गुलदावदी जैसे कुछ पौधों को फूलने के लिए लम्बी रातें चाहिए, तो गेहूँ और चना जैसे कुछ पौधों को लम्बे दिन। ठण्डे स्थानों पर उगने वाले सेब जैसे पेड़-पौधों को इसके लिए बर्फ जितने निम्न तापमान से गुज़रना ज़रूरी होता है जबकि कुछ रेगिस्तानी पौधों में फूल आना पर्याप्त मात्रा में बारिश होने पर निर्भर रहता है।

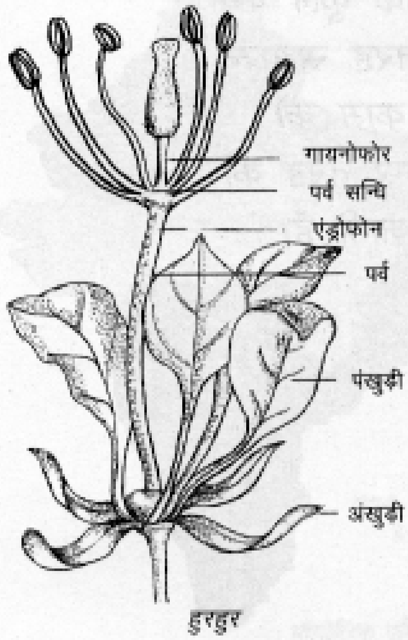

हुरहुर

फूल वस्तुतः एक रूपान्तरित तना है। इस बात के समर्थन में कई प्रमाण दिए गए हैं। तने की ही तरह कुछ फूलों में पर्व और पर्व सन्धियाँ पाई जाती हैं, जैसे हुरहुर। फूल में पत्तियों जैसी चपटी रचनाएँ (अंखुड़ियाँ और पंखुड़ियाँ) चक्र में पत्तियों की तरह लगी होती हैं। ये कभी-कभी तो बिलकुल पत्तियों जैसी ही होती हैं, जैसे गुलाब में, और कभी-कभी ठीक संयुक्त पत्तियों जैसी।

कारण कुछ भी हो, फूलने के जैव-रासायनिक संकेत मिलते ही पौधा फूलने-फलने की रासायनिक तैयारी करना शुरू कर देता है, जिसकी परिणति पुष्प कलिकाओं के रूप में होती है। ऐसे में पौधे के तने पर पत्तियों की कोख (कक्ष) में जहाँ कुछ समय पूर्व पर्ण कलिकाएँ आ रही थीं, अब पुष्प कलिकाएँ आने लगती हैं। माना गया है कि पौधे को फूलने का यह सिग्नल एक हॉरमोन के रूप में मिलता है जिसे फ्लोरीजेन नाम दिया गया है। इसे अभी तक खोजा जाना बाकी है, हालाँकि हाल ही में इसकी उपस्थिति के कुछ पुख्ता संकेत ज़रूर मिले हैं।

एक बार यह तय हो जाने पर कि फूलने का समय आ गया है, पौधों की कलिकाओं की कोशिकाओं में ऐसे जैव-रासायनिक परिवर्तन होने लगते हैं जो फूलों के निर्माण में सहायक होते हैं। जैसे पंखुड़ियों को रंगीन बनाने के लिए विभिन्न रंजक यानी एन्थोसायनिन, कैरोटीनॉइडों और फ्लेवनॉइडों का बनना। पुंकेसरों में पराग कणों और अण्डाशय में बीजाण्डों को बनाने के लिए ढेर सारा नया आनुवंशिक पदार्थ, विशेष प्रकार के प्रोटीन, फूलों को सुगन्धित बनाने हेतु विभिन्न प्रकार के वाष्पशील सुगन्धित पदार्थ तथा कीटों, पतंगों, पक्षियों को आकर्षित करने के लिए ढेर सारा मीठा सुगन्धित मकरन्द बनने लगता है।

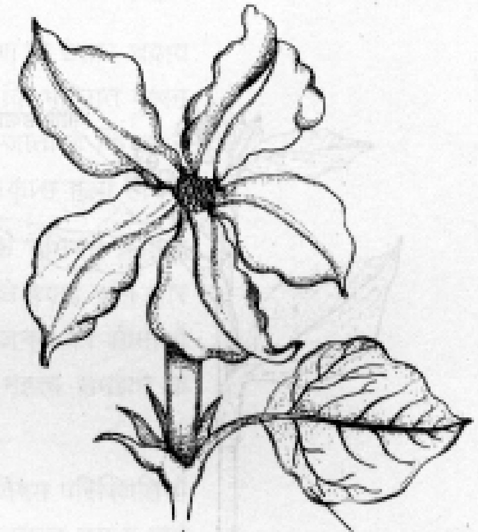

ये सभी परिवर्तन एक पर्ण कलिका को पुष्प कलिका में बदल देते हैं। पुष्प कलिका की एक और विशेषता होती है – इसकी वृद्धि सीमा निर्धारित होना। पुष्प कलिका में कोशिकाओं की पुनः विभेदन क्षमता पर रोक लग जाती है जो निषेचन के पश्चात भ्रूण बनने पर बहाल हो जाती है। पुष्प कलिका पुनः नई पुष्प कलिका नहीं बनाती जबकि वर्धी कलिका से बनी शाखाएँ फिर से नई शाखाएँ बनाने वाली कलिकाएँ बनाती रहती हैं। इसे मॉड्यूलर किस्म की वृद्धि कहते हैं। पुष्प कलिका की वृद्धि की सीमा निर्धारित होती है – फूल और फल तक।

कुल मिलाकर पौधों में फूलों का खिलना पर्यावरणीय कारकों से प्रेरित जैव रासायनिक क्रिया है जो पौधों की वंश वृद्धि का मार्ग प्रशस्त करती है।

भूमिगत फूल

कोमेलाइना

सुनने में अजीब ज़रूर लगता है मगर यह सच है कि फूल भूमिगत अर्थात् ज़मीन के अन्दर भी होते हैं। पौधों की जिन 36 प्रजातियों में भूमिगत पुष्पन (amphicarpy) का विकास हुआ है वे मुख्यतः खरपतवार हैं। अपने आसपास भूमिगत फूल देखना हो, तो आप कनकव्वा *(कोमेलाइना)* या खट्टी बूटी *(ऑक्सेलिस)* नाम के पौधों को देख सकते हैं। इन्हें सावधानीपूर्वक जड़ समेत उखाड़ लें। यहाँ दिए गए चित्र की मदद से इनके भूमिगत फूल ढूँढने की कोशिश करें। भूमिगत फूलों में सदा स्व-परागण ही होता है। यानी फूल के पराग कण अपने ही फूल के वर्तिकाग्र के ज़रिए अण्डाशय तक पहुँचते हैं। अर्थात इन्हें परागण सम्भव बनाने के लिए संसाधनों की खपत नहीं करनी पड़ती। इस तरह का प्रजनन काफी सस्ता है और ज़्यादा सुनिश्चित भी। इस लिहाज़ से भूमिगत तौर पर उत्पन्न बीज सस्ते होते हैं। मगर ऐसे बीजों के निर्माण में आनुवंशिक परिवर्तनों की सम्भावना क्षीण होती है जबकि पर-परागण के ज़रिए आनुवंशिक विविधता को बढ़ावा मिलता है। इसलिए अधिकांश पेड़-पौधों में पर-परागण को सम्भव बनाने तथा स्व-परागण को रोकने की व्यवस्था पाई जाती है।

भूमिगत फूलों का विकास

भूमिगत पुष्पन के विकास को किन कारकों ने बढ़ावा दिया है, यह सवाल अनुत्तरित है। इस बारे में कई विचार प्रस्तुत हुए हैं। यह स्पष्ट है कि भूमिगत पुष्पन विभिन्न परस्पर असम्बन्धित प्रजातियों में विकसित हुआ है। अतः सम्भावना इस बात की है कि इसका विकास कई अलग-अलग कारकों की वजह से हुआ होगा।

एक विचार यह है कि भूमिगत बीज उत्पादन का महत्व यह है कि ये बीज व इनसे उत्पन्न पौधे उसी सूक्ष्म प्राकृतवास में बने रहते हैं जो सम्भवतः इनके लिए उपयुक्त है।

दूसरा विचार यह है कि ये भूमिगत बीज बाहरी पर्यावरण के उतार-चढ़ाव से बचे रहते हैं। कुछ उदाहरणों में यह बताया गया है कि भूमिगत पुष्पन शायद आग से बचाव प्रदान करता है। यह भी सोचा जाता है कि चरने वाले जन्तुओं के दबाव के चलते भूमिगत बीजों का विकास हुआ होगा।

उपरोक्त सभी परिकल्पनाएँ यह मानकर चलती हैं कि भूमिगत प्रजनन के कुछ लाभ अवश्य हैं। सवाल यह है कि फिर ऐसे पौधे हवाई फूल और हवाई बीज उत्पन्न ही क्यों करते हैं? क्या भूमिगत प्रजनन की सीमाओं से बचने के लिए? इस सन्दर्भ में भूमिगत फूलों का महत्व समझने के लिए और जानकारी की आवश्यकता है।

भूमिगत पुष्पन वाले ऐसे पौधे होते हैं जिनका अत्यन्त विषम परिस्थितियों एवं पर्यावरण में विकास हुआ है। इनमें गज़ब की अनुकूलन क्षमता पाई जाती है। इसी कारण खेती में इनसे छुटकारा पाना भी मुश्किल होता है। लगता है कि भूमिगत फूलों का विकास खरपतवारों की जीवटता एवं अनुकूलन का एक और तरीका है। गौरतलब है कि कनकव्वा और खट्टी बूटी दोनों ही आम खरपतवार हैं।

भंवरे ने खिलाए फूल

चीड़ का मादा शंकु

हममें से कई लोग शायद फूलों के परागण में मधुमक्खियों के योगदान के बारे में जानते होंगे। परन्तु शायद कम ही लोग इस बात से वाकिफ होंगे कि कीट-पतंगे सदियों से फूलों के परागण का कार्य करते आए हैं। पौधों और जन्तुओं का यह रिश्ता बेहद पुख्ता है। सच तो यह है कि वनस्पति जगत जितना रंगीन, सुगन्धित व मनोहारी नज़र आता है, कीट-पतंगों के बिना वह उतना हो ही नहीं सकता था। यही बात कीटों पर भी लागू होती है। इनकी विविधताओं, विचित्रताओं में तरह-तरह की वनस्पतियों का योगदान है।

कीटों का उद्भव व विकास कार्बोनीफेरस काल (35 करोड़ वर्ष पूर्व) के अन्त और पर्मियन काल (27 करोड़ वर्ष पूर्व) में हो चुका था। पौधों में यह समय फर्न समूह की वनस्पतियों के उत्थान का था। इसी दौरान कुछ बीजधारी फर्न भी बने। यानी कीट तो फर्न व साइकैड समूह के पूर्व ही अस्तित्व में आ चुके थे। उस समय के कीटों व इन पौधों के आपसी सम्बन्धों की खोजबीन से पता चलता है कि शुरुआत में बड़े-बड़े बीटल (भृंग) साइकैड (मदनमस्त) के विशाल रंगीन जननांगों की ओर केवल भोजन की तलाश में आकर्षित हुए थे। उनके पास न तो इन आश्चर्यों को देखने का समय था और न ही उनके जननांगों को निषेचित करने के लिए व्यर्थ की ऊर्जा थी। उनका मकसद तो रंगीन, स्वादिष्ट व पौष्टिक जननांगों, खासतौर से पराग कणों का भक्षण करना होता था। पराग कण बड़ी संख्या में होते भी थे।

सायकस का पेड़

वनस्पतियों के विकास के सन्दर्भ में अगर यह माना जाए कि शंकुधारी चीड़ और देवदार जैसे पेड़ साइकैड से विकसित हुए हैं तथा फूलधारी वनस्पति किसी विलुप्त शंकुधारी पौधे से, तो यह मानना तर्कसंगत लगता है कि शंकुधारियों के पूर्वज भी आज के चीड़ और देवदार की

तरह अपने पराग कण हवा में ही छोड़ते होंगे और हवा ही इन्हें मादा शंकुओं तक ले जाती होगी। इनके बीजाण्ड पत्तियों या शंकुओं पर बनते थे, जिनके सिरे से चिपचिपा रस स्रवित होता था। आज भी शंकुधारियों में ऐसा ही होता है। इन चिपचिपी बूंदों में हवा में उड़ने वाले पराग कण चिपक जाते हैं और द्रव के सूखने पर उसके साथ-साथ अन्दर तक चले जाते हैं। बीटल तने और पत्तियों से निकलने वाला चिपचिपा मीठा द्रव और रेज़िन खाते थे। वे प्रोटीन युक्त पराग कणों के सम्पर्क में आने से निश्चित रूप से इसके आदी हो गए होंगे।

इसके बाद ये बीटल भोजन के इस नए स्रोत की तलाश में नियमित रूप से नर और मादा शंकुओं के चक्कर लगाने लगे। इस दौरान अनजाने में ही वे पराग कणों को बीजाण्ड तक पहुँचा देते थे। अकेले हवा के ज़रिए होने वाले परागण की बजाय नियमित रूप से आने-जाने वाले बीटलों के द्वारा होने वाला यह परागण कुछ पौधों के लिए ज़्यादा कारगर रहा होगा। ऐसे में जो पौधा बीटलों के लिए ज़्यादा लुभावना होता, पोषण के लिहाज़ से उस पर तरह-तरह के कीटों के आने की सम्भावना बढ़ जाती थी। स्वाभाविक रूप से ऐसा पौधा ज़्यादा बीज बनाता होगा।

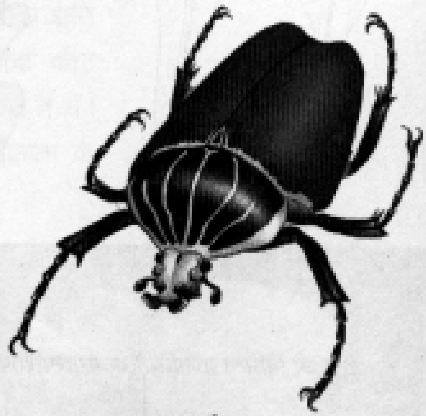

बीटल

इस स्थिति में पौधों में अचानक हुए किसी ऐसे उत्परिवर्तन को प्राकृतिक चयन का ज़्यादा लाभ मिलने की सम्भावना है जिससे बीटलों का आना-जाना बढ़ता हो। पौधों और कीटों में ऐसे कई वैकासिक परिवर्तन देखे गए हैं जो प्रत्यक्ष रूप से कीट-पतंगों द्वारा होने वाले परागण के लाभ के फलस्वरूप उत्पन्न हुए हैं।

जिन पौधों के पास अपने परागणकर्ता को देने के लिए खाने योग्य पंखुड़ियाँ, पराग कण और बीजाण्ड के आसपास चिपचिपे खाद्य पदार्थ थे, उन्हें प्राकृतिक चयन का ज़्यादा लाभ मिला। इनके अलावा कुछ पौधे ऐसे भी विकसित हुए जिनके पास विशिष्ट ग्रन्थियाँ थीं और जो स्वादिष्ट मकरन्द स्रवित करती थीं। यह शर्करा और प्रोटीन युक्त पदार्थ कीटों को आज भी आकर्षित करता है।

सायकस का मेगास्पोरोफिल

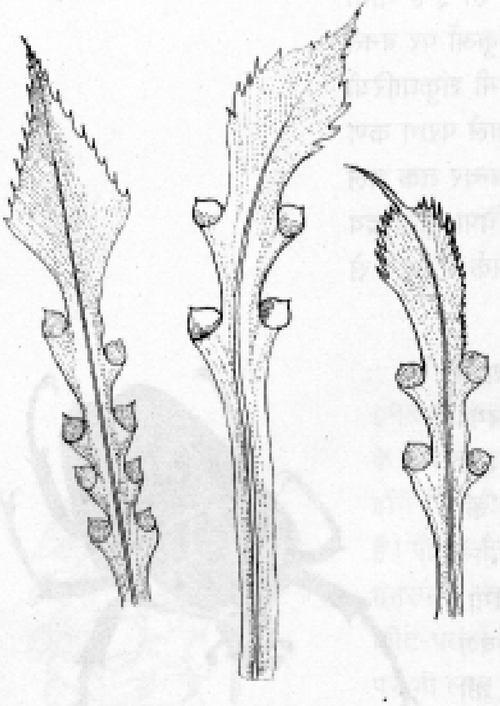

सायकस की विभिन्न प्रजातियों के मेगास्पोरोफिल

फूलों की इन विशेषताओं के चलते बीटलों की ज़्यादा आमदरफ्त और परागण में मदद मिलने तक तो ठीक था। लेकिन कीट जब इन जननांगों पर ज़्यादा मँडराने लगे तो एक नई समस्या पैदा हो गई। समस्या यह थी कि ये बीटल शेष चीज़ों के साथ बीजाण्ड भी चट कर जाते थे। यानी जिस बीज को बनाने के लिए सारी युक्तियाँ रची जा रही हों उसी की सुरक्षा को खतरा पैदा हो गया था। तो पौधों के सामने यह चुनौती थी कि अपने बहुमूल्य बीजाण्डों को बीटल द्वारा खाए जाने से कैसे बचाएँ।

लिहाज़ा, स्वादिष्ट पोषण से भरपूर चटख रंग के बीजाण्डों को बचाने की जुगाड़ में जो अण्डप पहले खुली थी, धीरे-धीरे बन्द होने लगी। चीड़ और देवदार जैसे नग्नबीजी पौधों (जिम्नोस्पर्म) में जो बीजाण्ड करोड़ों वर्ष पूर्व जनन पत्तियों (मेगास्पोरोफिल) पर खुले लगे होते थे अब ढँके जाने लगे। इस तरह कीटों के दबाव के चलते पौधों के जननांगों में हुए लाभकारी परिवर्तन के कारण एंजियोस्पर्म यानी अण्डाशय में सुरक्षित बीजों वाले पौधों का विकास हुआ। फूलों में हुए अन्य परिवर्तनों से भी बीजाण्डों के खाए जाने का खतरा कम हो गया (जैसे पंखुड़ी की नलीनुमा रचना और अण्डाशय का पंखुड़ी-अंखुड़ी के नीचे की ओर आ जाना)।

फूलों में दूसरा परिवर्तन था द्विलिंगी फूलों का बनना। एक ही फूल में नर व मादा जननांगों की उपस्थिति से परागणकर्ता का प्रत्येक दौरा ज़्यादा सफल यानी ज़्यादा फलदायक होती थी क्योंकि एक ही बार में कीट पराग कणों का लेना व देना दोनों कर सकता था। पूर्व के पौधों में ऐसा न था। आज भी चीड़ और देवदार के नर व मादा शंकु अलग-अलग पाए जाते हैं। इस परिवर्तन, यानी द्विलिंगी फूलों के निर्माण के बाद शुरुआती किस्म की स्व-अनिषेच्यता (यानी अपने ही पराग कणों से निषेचित न होने) की स्थिति उत्पन्न हुई। इससे पर-परागण को बढ़ावा मिला।

मीसोज़ोइक काल (लगभग 20-22 करोड़ वर्ष पूर्व) के शुरुआती दौर में ही मधुमक्खियों, ततैयों, तितलियों और पतंगों का विकास हो चुका था। और ये पृथ्वी पर अन्य जीवों, विशेष रूप से उच्च श्रेणी के पौधों के

वैकासिक इतिहास में अपनी भूमिका अदा कर चुके थे। इन लम्बी जीभ वाले कीटों के उत्थान और विविधता के परिणामस्वरूप ही फूलधारी पौधों का विकास हुआ है। इनके लिए शुरुआती फूल ही भोजन का एकमात्र स्रोत थे। भोजन के इस सम्बन्ध से फूलों का विकास प्रभावित हुआ तथा कीटों ने फूलधारी पौधों को दूर-दूर तक फैलाने के महत्त्वपूर्ण काम को भी अंजाम दिया।

आज की तरह पहले भी कुछ कीट भोजन के लिए चुनिन्दा किस्म के पौधों पर ही आते थे। फिर भी पौधों की कोई एक प्रजाति किसी एक ही प्रजाति के कीटों पर निर्भर न थी। अधिकांश फूलों पर एक से अधिक कीट मँडराते थे। इसी तरह कीट भी एक ही प्रकार के फूलों पर आश्रित न थे। सभी कीट कई किस्म के फूलों पर आते-जाते थे क्योंकि कई किस्म के पौधों पर एक साथ बहार आती थी।

किसी विशेष फूल को कुछ चुनिन्दा किस्म के कीटों द्वारा ज़्यादा पसन्द किए जाने पर समय के साथ इन फूलों में परिवर्तन हुए और ये कीटों के हिसाब से विशिष्ट होते गए। या यों कहें कि अनुकूलित हो गए। विकास के दौरान फूलों में कुछ ऐसे परिवर्तन हुए जो कीटों की नियमितता को उत्साहित करने वाले थे। इनके कारण कीट बार-बार उड़कर उन्हीं फूलों पर जाते। ये परिवर्तन दो तरह के थे। पहला परिवर्तन यह था कि फूल एक-दूसरे से ज़्यादा से ज़्यादा अलग-अलग दिखने लगे। जैसे एकदम अलग रंग, गन्ध और आकार। ये विशिष्टताएँ इतनी स्पष्ट हैं कि मनुष्य ने इनके परागणकर्ता के आधार पर इनका नामकरण कर दिया है। जैसे मधुमक्खियों से परागित फूलों को बी फ्लावर और पक्षियों से परागित फूलों को बर्ड फ्लावर आदि।

बी फ्लॉवर

दूसरे प्रकार के परिवर्तन ऐसे आकारिकीय लक्षण थे जिनके चलते परागणकर्ता के अलावा अन्य कीट इन फूलों से दूर रहने लगे। जैसे फूलों की नली की लम्बाई। कई फूलों में मकरन्द इनकी नली के नीचे वाले हिस्से में उपस्थित रहता है। यहाँ से केवल उचित लम्बाई की चोंच या जीभ वाले जन्तु ही मकरन्द प्राप्त कर सकते हैं। इस तरह मकरन्द और पराग बेकार नहीं जाता और परागण भी सुनिश्चित हो जाता है।

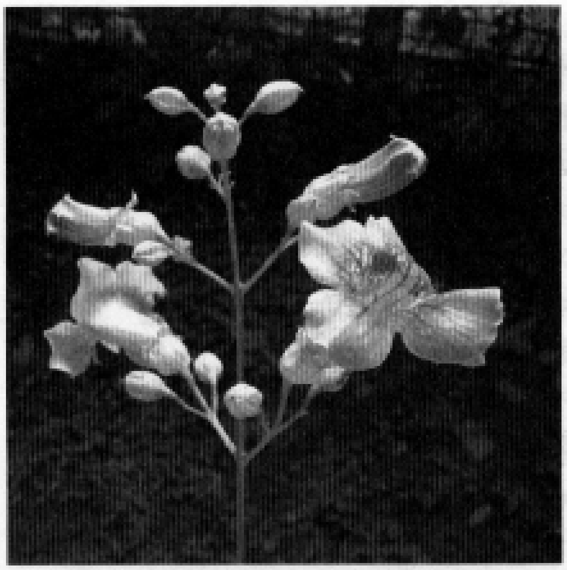

बर्ड फ्लावर

फूलों में कुछ परिवर्तन ऐसे भी हुए जिनसे पराग कणों की एक ही खेप से सभी बीजाण्डों का निषेचन सम्भव हो सका। जैसे स्वतंत्र पंखुड़ियों की बजाय जुड़ी हुई पंखुडियाँ और अण्डपों का आपस में जुड़ना। इससे बीजों की संख्या बढ़ी। अलग-अलग अण्डपों वाले पुरातन किस्म के फूलों में बीज बनने के लिए प्रत्येक अण्डप का पृथक-पृथक परागण ज़रूरी था।

टर्शरी काल (करीब साढ़े छह करोड़ वर्ष पूर्व) के आते-आते कई फूलों और कीटों के सह-विकास के चलते कई सारे फूलों की पंखुड़ियाँ जुड़ चुकी थीं और लम्बी जीभ वाले कीट, विशेषकर मधुमक्खियों व फूलों के आपसी सम्बन्ध पक्के हो चुके थे। फूलों और कीटों में इस तरह के अनुकूलन अचानक व संयोगवश हुए परिवर्तनों के कारण बने हैं। ये परिवर्तन फूल या परागणकर्ता किसी के लिए भी ज़रा-सा लाभकारी सिद्ध होने की स्थिति में ऐसे परिवर्तित समूहों ने अन्य की अपेक्षा ज़्यादा सन्तति उत्पन्न की होगी। इस तरह प्राकृतिक चयन के तहत ऐसे अनुकूलित फूलों और कीटों का चुनाव हुआ और धीरे-धीरे ये एक-दूसरे के पूरक बन गए। सह-विकास के अद्वितीय उदाहरण, जैसे अंजीर-*ब्लास्टोफेगा*, यूक्का-प्रोन्यूला आदि हमारे आसपास बिखरे पड़े हैं। सच ही है कि इस दुनिया को ज़्यादा रंगीन, सुगन्धित व रसीली बनाने में कीट-पतंगों का बड़ा योगदान है।

फूल की पहचान तो पंखुड़ियाँ ही हैं

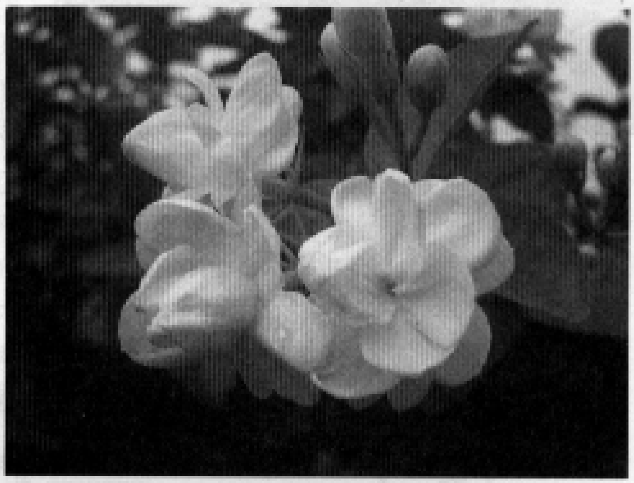

मोगरा

बारिश के मौसम में चारों तरफ हरियाली छा जाती है। हरियाली के शिखर और कोख में रंगीन फूलों की बहार मुस्कराती है। मैं ठहरा वनस्पति शास्त्र का विद्यार्थी। तो मेरे मन में यह विचार आता है कि वह "फूल गेंदवा" क्या है जो मारने पर करेजवा पर चोट करता है। आपको भी याद आ रहा होगा वह गाना – "फूल गेन्दवा न मारो, लगत करेजवा पे चोट"।

फूलों का ज़िक्र होते ही ज़ेहन में जो फूल उभरते हैं उनमें गुलाब, चम्पा, चमेली, जूही और मोगरा ज़रूर होते हैं। गीत भी है – "केतकी-गुलाब-जूही-चम्पक बन फूले।" ये ही तो हमारे प्रिय फूल हैं जो हर घर के आँगन और बगिया में खिलते हैं, महकते हैं।

विज्ञान की दृष्टि से देखें तो फूल पौधों के प्रजनन अंग हैं, जिनमें कई रूपान्तरित पत्तियाँ फूल के अक्ष पर एक निश्चित क्रम में लगी रहती हैं। यह क्रम बाहर से अन्दर की ओर कुछ इस प्रकार होता हैः सबसे बाहर की ओर अंखुड़ियाँ जो अक्सर हरी होती हैं, फिर पंखुड़ियाँ जो रंगीन होती हैं। उनके भी अन्दर झाँकें तो पुंकेसर और बीचों-बीच स्त्रीकेसर। ये सब मिलकर एक फूल बनता है। हालाँकि कुछ फूलों में या तो पुंकेसर होते हैं या स्त्रीकेसर। जैसे गिलकी, कद्दू, करेला, पपीता आदि के फूल। फिर भी उन्हें हम फूल ही कहते हैं। ज़्यादा से ज़्यादा एकलिंगी का विशेषण लगा देते हैं।

दरअसल हमें फूलों को परिभाषित करने की ज़रूरत ही नहीं पड़ती। हम

सफेद चम्पा

तो उन्हें दूर से ही देखकर पहचान लेते हैं। जिन अंगों को देखकर हम फूलों को पहचानते हैं वे हैं रंग-बिरंगी, सुन्दर-सुगन्धित,नाज़ुक पंखुड़ियाँ।

आइए देखें कि हमारे परिचित फूल, मसलन चम्पा, चमेली और मोगरा वास्तव में कितने फूल हैं।

हमारे आसपास दो तरह के चम्पा नज़र आते हैं। एक हरा चम्पा और दूसरा पीला-लाल या सफेद चम्पा। पीले-लाल चम्पा की पत्तियाँ बहुत बड़ी-बड़ी – लगभग 1 फीट लम्बी – होती हैं। यह असली चम्पा नहीं है। यह तो सदाबहार (पेरिविंकल) के कुल का एक बड़ा विचित्र-सा पेड़ है। इसे बाग में और मन्दिरों के आसपास लगाया जाता है। यही कारण है कि इसका एक नाम पेगोडा ट्री भी है। यह एक पतझड़ी किस्म का मध्यम आकार का पेड़ है। नाम है *प्लुमेरिया*। इसमें लाल, सफेद, पीले रंग के फूल आते हैं जिनमें प्रमुखता से पंखुड़ियाँ ही नज़र आती हैं।

एक और चम्पा है, जिसे हरा चम्पा या नाग चम्पा कहते हैं। यह एक बहुवर्षी बेलनुमा झाड़ी है। बढ़िया खुशबू होती है इसके फूलों में। मान्यता है कि इसकी इसी सुगन्ध के कारण नाग इसके आसपास रहते हैं। इसी कारण इसे नाग चम्पा नाम मिला है। यह छीताफल कुल का पौधा है और इसके फूल छीताफल के फूलों जैसे ही होते हैं। इसके फूलों में तीन अंखुड़ियाँ और तीन पंखुड़ियाँ होती हैं। ये छह की छह हरे रंग की मोटी गूदेदार और सुगन्धित होती हैं। इसमें भी प्रमुखता से ये अंखुड़ियाँ-पंखुड़ियाँ ही दिखाई देती हैं; पुंकेसर और स्त्रीकेसर आसानी से नज़र नहीं आते।

अब असली चम्पा यानी सुवर्ण चम्पा और हिम चम्पा की बात करें। इन्हें कम ही लोगों ने देखा होगा। ये आमतौर पर मिलनेवाले फूल नहीं हैं। इनके नाम हैं *माइकेलिया चम्पका* (सुवर्ण चम्पा) और *मेग्नोलिया ग्राण्डीफ्लोरा* (हिम चम्पा)। यह नाम इसे सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध फ्रांसीसी वनस्पति शास्त्री पियरे मेग्नोल (Pierre Magnol) के नाम पर दिया गया है। इसमें हल्के पीले रंग के सुगन्धित फूल आते हैं।

मोगरा, चमेली, जूही हमारे जाने-पहचाने फूल हैं जो गर्मियों में खिलना चालू होते हैं तो बरसात तक महकते रहते हैं। मोगरा का वैज्ञानिक नाम *जैस्मिनम सेम्बेक* है। अरेबियन जैस्मिन भी यही है। अगरबत्तियों में गुलाब, चन्दन, चमेली के बाद सबसे ज़्यादा मोगरा ही पसन्द किया जाता है। चीन में चाय को सुगन्धित बनाने के लिए मोगरे की कलियाँ डाली जाती हैं। हमारे यहाँ भी गर्मियों में पानी को महकाने के लिए मटके में मोगरे की कलियों का उपयोग किया जाता है। मोगरे के फूलों के हार और बालों में सजाई जाने वाली वेणी के तो क्या कहने! मोगरे और चमेली को जब तोड़ते हैं तो हाथ में सिर्फ पंखुड़ियाँ ही आती हैं। फूल की चीर-फाड़ करने पर भी सिवाय पंखुड़ियों के कुछ और नहीं दिखता। ये ओलिएसी कुल के सदस्य हैं। यही हाल कुन्दा और जूही का है। यानी फूल के नाम पर सिर्फ पंखुड़ियाँ।

तो कुल मिलाकर सतही तौर पर तो ऐसा लगता है कि जिसे हम फूल कहते हैं वह तो केवल पंखुड़ियों का समूह भर है। आम आदमी का फूल तो यही है। वैज्ञानिकों का कुछ और हो सकता है। वैसे वैज्ञानिक भी सामान्यतः उन्हीं प्रजनन अंगों को फूल कहते हैं जिनमें पंखुड़ियाँ होती हैं। क्योंकि नर व मादा प्रजनन अंग तो नग्नबीजी पौधों में भी होते हैं परन्तु उन्हें कोई फूल नहीं कहता, उन्हें तो शंकु कहा जाता है। तो फूल यानी पंखुड़ियाँ। फूलधारी पौधों की पहचान ही है ये पंखुड़ियाँ। एक मायने में रंग-बिरंगी, सुन्दर सुगन्धित पंखुड़ियाँ ही फूल हैं।

इसी तरह गेहूँ, घास व बाँस में भी फूल आते हैं पर आम लोग उन्हें फूल नहीं कहते। साहित्यकार भी नहीं। रामचरित मानस के रचयिता तुलसीदास ने अपनी रचनाओं में खूब प्रकृति वर्णन किया है परन्तु उन्हें भी बेंत के फूल नहीं दिखे – "फूलही-फरही न बेंत, जदपि सुधा वर्षही जलद" यानी अमृत जैसी वर्षा होने पर भी बेंत में फूल-फल नहीं आते। परन्तु वैज्ञानिक कहते हैं कि बेंत में फूल भी आते

घास के फूल

बरगद के बन्द पुष्पक्रम

हैं और फल भी लगते हैं, हालाँकि वर्षों बाद। वैसे कोई आश्चर्य नहीं कि तुलसीदास को बेंत में फूल नज़र नहीं आए। दिखते भी कैसे, कल्पना में तो सुन्दर सुगन्धित रंगीन पंखुड़ियों वाले फूल थे। तो जन सामान्य ही नहीं, साहित्यकार, ज्ञानी, प्रकृतिविद् आदि सबके लिए फूल यानी पंखुड़ियाँ।

आपको कभी गूलर, पीपल, बरगद व अंजीर में फूल दिखाई दिए? नहीं ना! वहाँ तो फल ही फल हैं। परन्तु वैज्ञानिक कहते हैं कि उनमें भी फूल आते हैं। उनका कहना है कि बिना फूल के फल बन ही नहीं सकता। अतः जहाँ फल हैं वहाँ फूल भी होंगे ही, भले चम्पा, चमेली, बेला और मोगरे की तरह न हों।

वैसे फूल ही फूल होने के बावजूद कभी आपको चमेली, मोगरा और गुलाब में फल दिखे? यानी कहीं फूल और फल दोनों हैं और कहीं फूल ही फूल हैं, फल नदारद हैं। फिर और कहीं फल ही फल हैं तो फूल नदारद हैं। इसे ही तो कहते हैं कुदरत का करिश्मा।

खण्ड 3: सफलता की युक्तियाँ

यह तो स्पष्ट ही है कि सजीवों के जीवन का एक प्रमुख मकसद सन्तानोत्पत्ति है। एंजियोस्पर्म पेड़-पौधों में सन्तानोत्पत्ति का यह काम फूलों के ज़िम्मे है। इसके लिए नर युग्मक यानी पराग कणों का मादा युग्मक यानी बीजाण्ड तक पहुँचना ज़रूरी होता है। चूँकि पौधे स्वयं चल-फिर नहीं सकते इसलिए वे पराग कणों को उचित जगह पहुँचाने के लिए विभिन्न अभिकर्ताओं के भरोसे रहते हैं। हवा, पानी, तितलियाँ, कीट-पतंगे, मक्खियाँ वगैरह ऐसे ही एजेन्ट हैं। हवा और पानी की बात जाने दें, मगर कीट-पतंगे, तितलियाँ, पक्षी वगैरह को इस काम के लिए प्रेरित करने के लिए पेड़-पौधों ने कई जुगाड़ जमाए हैं। इन आश्चर्यजनक युक्तियों की बात अगले कुछ लेखों में की गई है।

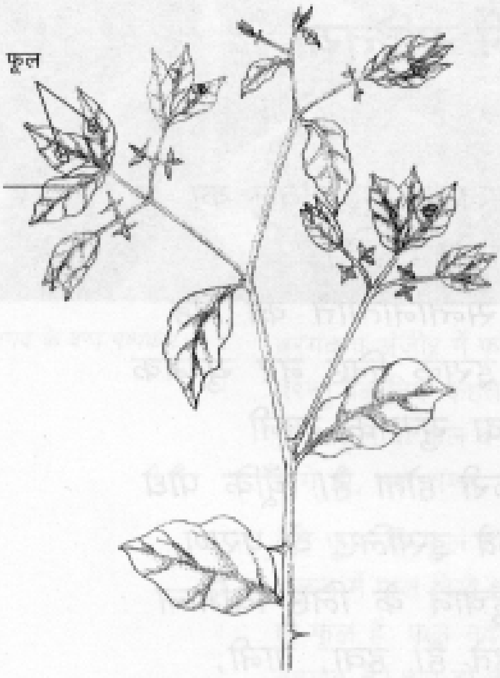

बोगनवेलिया

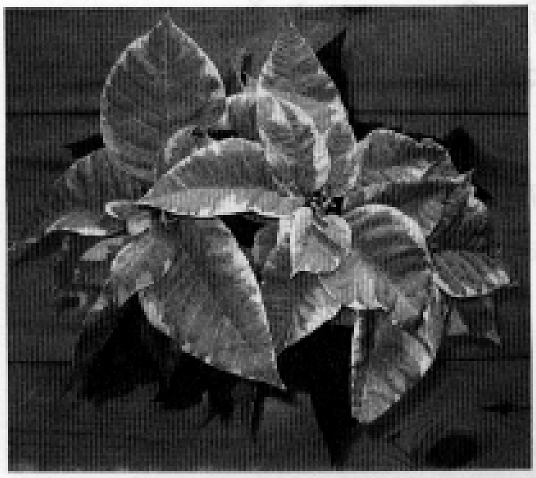
लाल पत्ता के ब्रेक्ट

जब न हों पंखुड़ियाँ!

फूलों से भला किसे प्यार न होगा। हर कोई इन्हें अपने घर-आँगन में उगाना चाहता है। प्रकृति को सुन्दर-सजीली बनाने में इनकी अहम भूमिका है। वैसे आजकल बाज़ार में नकली फूलों की भरमार है, परन्तु उनमें वह बात कहाँ जो असली फूलों में होती है। भला कोई गुलाब, मोगरा, चम्पा, चमेली और रातरानी की सुन्दरता एवं सुगन्ध की बराबरी कर सकता है?

फूलों का मुख्य काम है बीजों का निर्माण। बीजों के बनने के लिए परागण की क्रिया ज़रूरी है। परागण होगा, तभी तो पराग कण पुंकेसरों से वर्तिकाग्र तक पहुँचेंगे और निषेचन की क्रिया हो पाएगी। परागण के लिए फूलों को कई युक्तियों का सहारा लेना पड़ता है। वैसे तो परागणकर्ता को आकर्षित करने के लिए फूल तरह-तरह के उपाय करते हैं मगर इसमें रंग-बिरंगी पंखुड़ियों की भूमिका महत्वपूर्ण है।

अपने परागणकर्ता (मसलन कीट-पतंगों और तरह-तरह के पक्षियों) को आकर्षित करने के लिए विज्ञापन का काम पंखुड़ियों के ज़िम्मे है। परन्तु कुछ फूलों में या तो पंखुड़ियाँ होती ही नहीं हैं या होती भी हैं तो बहुत छोटी और अनाकर्षक। ऐसे में विज्ञापन का काम फूल के दूसरे भागों को करना पड़ता है।

कुछ फूलों में ये भाग पंखुड़ियों जैसे दिखाई देते हैं मगर वास्तव में ये फूलों के नीचे पाई जाने वाली पत्तियाँ हैं, जिन्हें निपत्र (bract) कहते हैं। सामान्यतः ये हरे रंग की बहुत छोटी पत्तीनुमा रचनाएँ होती हैं। परन्तु बोगनवेलिया में ये हरी और छोटी न होकर बहुत बड़ी और विविध रंगों की होती हैं – गुलाबी, लाल, पीली, सफेद और नीली तक। असली फूल तो इनके अन्दर छुपे होते हैं, जिन्हें देखने के लिए निपत्रों को हटाना पड़ता है। निपत्रों को हटाकर देखें, तो बोगनवेलिया के फूल नज़र आते हैं – छोटे-छोटे व कुछ सफेद से।

इस प्रकार के फूलों का दूसरा परिचित उदाहरण है लाल पत्ता (*युफोर्बिया पल्चेरिमा*), जिसे बगीचों व घरों में सजावट के लिए लगाया जाता है। इसके सुर्ख लाल रंग के निपत्र बहुत आकर्षक होते हैं जिनके बीच हरे, लाल, पीले रंग के फूल पाए जाते हैं। एक अन्य सजावटी पौधे *डायकोमिया सिलियेटा* में फूल गुच्छों में पाए जाते हैं। प्रत्येक गुच्छे के नीचे चार से सात तक निपत्र मिलते हैं, जो हरे न होकर बर्फ की तरह सफेद होते हैं। मधुमक्खियों और अन्य कीटों को ये ही लुभाते हैं।

यह न सोचें कि हर जगह यह काम निपत्र करते हैं। कुछ पौधों में यह काम करती तो पंखुड़ियाँ ही हैं मगर थोड़ा अलग ढंग से। जैसे, सूरजमुखी में जिसे हम फूल कहते हैं, दरअसल वह एक फूल न होकर पूरा पुष्पक्रम है। इस पुष्पक्रम में दो तरह के फूल होते हैं। पुष्पक्रम के बाहरी गोल घेरे के फूलों की पंखुड़ियाँ सूर्य की किरणों के समान दिखती हैं। कीट-पतंगों को आकर्षित करने का काम एक पंखुड़ी की बजाय पूरे घेरे की पंखुड़ियाँ सामूहिक रूप से करती हैं। यानी पंखुड़ियाँ तो छोटी-छोटी हैं मगर फूल बड़ा है। है न मज़ेदार बात?

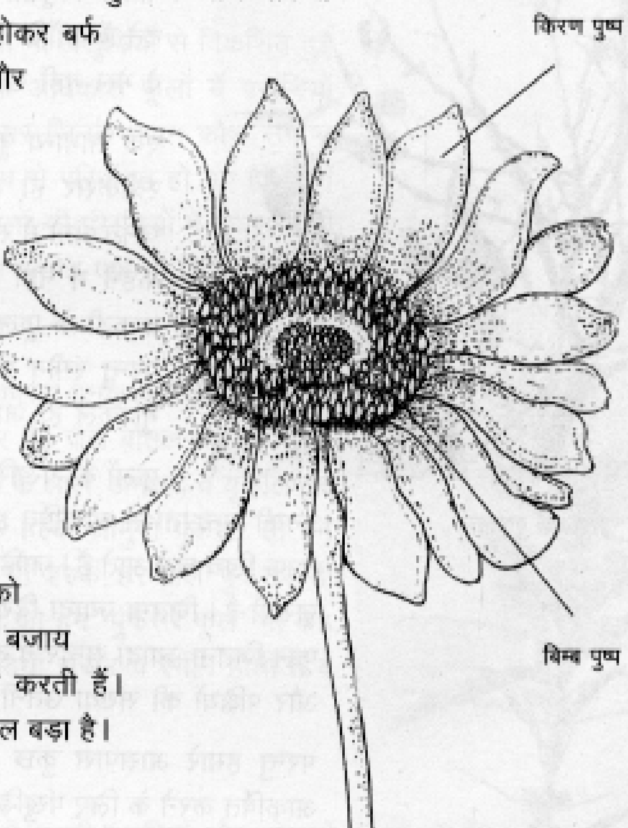

सूरजमुखी का पुष्पक्रम

फूलों ने पहना ताज

पीपल के पुष्पक्रम

सुन्दर, सुगन्धित, रंग-बिरंगी पंखुड़ियाँ ही तो फूलों की पहचान हैं। हमारी नज़रें भी उन्हीं फूलों पर ठहरती हैं जिनमें आकर्षक पंखुड़ियाँ हों – जैसे गुलाब, कमल, चम्पा, ग्लेडीयोलस और सूरजमुखी। घास, बाँस और पीपल के फूलों को तो हम फूल मानने से ही इन्कार कर देते हैं क्योंकि हमारी कल्पना में बैठे फूलों के रंग-रूप से वे मेल नहीं खाते।

एक सामान्य फूल में अंखुड़ियाँ, पंखुड़ियाँ, पुंकेसर और स्त्रीकेसर ही तो होते हैं। स्त्रीकेसर या पुंकेसर जैसे जनन अंगों में से कोई एक अंग ही हो तो भी हम उसे फूल कहने में नहीं हिचकिचाते। गिलकी, कद्दू, करेला या ककड़ी के फूल ऐसे ही एकलिंगी फूलों के उदाहरण हैं। परन्तु रंगीन पंखुड़ियाँ न हों तो उसे फूल कहना ज़रा मुश्किल हो जाता है।

फूलों की पंखुड़ियाँ अक्सर सुन्दर और सुगन्धित होती हैं। इनकी सुन्दरता से आकर्षित हो तरह-तरह के कीट तथा पक्षी फूलों की तरफ खिंचे चले आते हैं। ज़ाहिर है इस तरह के विज्ञापन के लिए दिखावा ज़रूरी है। जितना ज़्यादा दिखावा उतना ही ज़्यादा प्रचार-प्रसार। यानी फूल जितना ज़्यादा सुन्दर व लुभावना होगा, उस पर मँडराने वाले कीटों और पक्षियों की संख्या उतनी ही ज़्यादा होगी।

परन्तु हमारे आसपास कुछ ऐसे भी फूल हैं जिनमें कीट-पतंगों को आकर्षित करने के लिए पंखुड़ियाँ नहीं हैं या इतनी छोटी हैं कि उन्हें देख पाना ही अत्यन्त मुश्किल होता है। ऐसी स्थिति में पंखुड़ियों की लुभावनी भूमिका फूल के कुछ अन्य अंग सम्हाल लेते हैं।

अंखुड़ियाँ

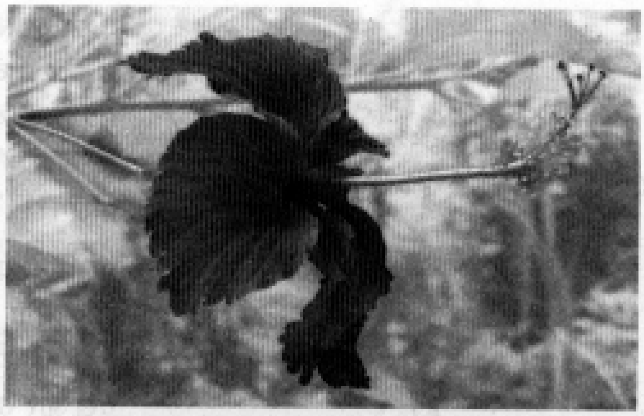

गुड़हल

अधिकांश फूलों में तो पंखुड़ियों के नीचे मिलने वाली अंखुड़ियाँ हरे रंग की होती हैं। जैसे गुलाब और गुड़हल। इनका प्रमुख काम कोमल पुष्प कली की रक्षा करना है। चूँकि ये हरी होती हैं इसलिए पत्तियों की तरह भोजन भी बनाती हैं। रंग-रूप में ये उस पौधे की पत्तियों से मिलती-जुलती होती हैं। जैसे गुलाब की अंखुड़ियाँ गुलाब की पत्तियों जैसी ही होती हैं। इनका विकास सामान्य पत्तियों से ही हुआ प्रतीत होता है क्योंकि इनमें पत्तियों की तरह ही तीन या तीन से ज़्यादा संवहन सूत्र (vascular strand) मिलते हैं।

कुछ फूलों (जैसे वॉटर लिली) में पंखुड़ियाँ भी अंखुड़ियों से विकसित हुई लगती हैं। वैसे ऐसा प्रतीत होता है कि अधिकांश फूलों में पंखुड़ियाँ पुंकेसर से विकसित हुई हैं – ऐसे पुंकेसर जिनके पराग कोश समाप्त हो गए और वे नए काम के लिए पूर्ण रूप से परिवर्तित हो गए हैं। ऐसा कहने का आधार यह है कि अधिकांश फूलों की पंखुड़ियों में पुंकेसरों की तरह केवल एक संवहन सूत्र मिलता है। अर्थात एक ही शिरा होती है।

लुभावने पुंकेसर

बोतल ब्रश

कई फूलों में सुन्दरता व आकर्षण का कारण इनके असंख्य, स्वतंत्र व तरह-तरह के रंग लिए हुए लम्बे पुंकेसर हैं। जैसे बोतल ब्रश के सुर्ख, बबूल के पीले, रेन ट्री के गुलाबी, केलेन्ड्रा के लाल, अमरूद व यूकेलिप्टस के सफेद-से तथा लाजवंती (छुईमुई) के हल्के जामुनी पुंकेसर ही इन फूलों को सुन्दर बनाते हैं। शिरीष में भी हल्के हरे-पीले पुंकेसर ही आकर्षण के केन्द्र हैं। अतः इन सब फूलों को हम 'पुंकेसर फूल' भी कह सकते हैं; इनकी तुलना में जिनकी पंखुड़ियाँ सुन्दर व रंगीन होती हैं वे 'पंखुड़ी फूल' हुए।

सोने में सुहागाः करोना

हमारे आसपास कुछ ऐसे फूल भी हैं जिनमें उनकी पंखुड़ियों और पुंकेसरों को प्रकृति ने ज़रा ज़्यादा ही सजाया-सँवारा है। फूलों में पाई जाने वाली

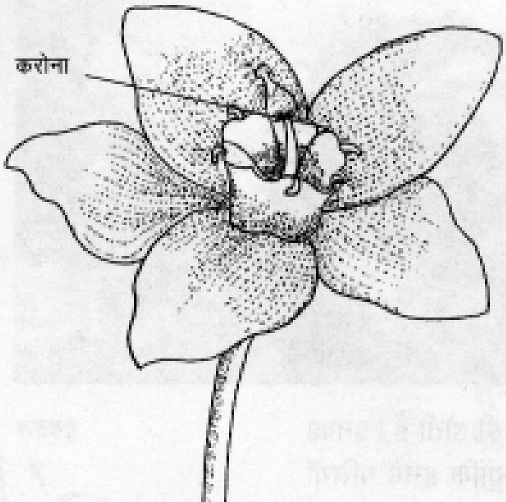

यूकेरिस में करोना

ये अतिरिक्त रचनाएँ सुन्दर फूलों की अनुपम छटा में चार चाँद लगा देती हैं। विश्वास न हो तो यहाँ छपे चित्रों को देख लें। ये तो केवल कुछ उदाहरण हैं, आपके आस-पास तो ऐसे और बहुत-से फूल मिलेंगे।

पंखुड़ियों या पंखुड़ियों और पुंकेसरों के मेल से बनी इस रचना को वैज्ञानिकों ने नाम दिया है – करोना (corona) यानी ताज। आइए ऐसे ही कुछ फूलों को देखें और उनमें करोना की सुन्दरता तथा कलात्मकता का आनन्द उठाएँ।

कुछ फूलों में फूल के शुरुआती विकास की अवस्था में पंखुड़ियाँ फलक के समान्तर फट जाती है, जिससे फूलों पर पंखुड़ियों के अतिरिक्त एक और चक्र बन जाता है। यही अतिरिक्त चक्र करोना है। फूलों में करोना पंखुड़ी जैसा, शल्कवत या रोएँनुमा हो सकता है। यह रचना पंखुड़ियों से जुड़ी हुई या अलग भी हो सकती है। इस तरह का करोना 'पंखुड़ी करोना' (corollary corona) कहलाता है। कुछ फूलों में करोना पुंकेसर के सहयोग से बनता है। इसे 'पुंकेसरीय करोना' (staminal corona) कहते हैं। दोनों ही करोना बहुत सुन्दर होते हैं। आइए ऐसे कुछ फूलों के उदाहरण देखें।

कनेर के फूल

कनेर, विशेष रूप से पाँच पंखुड़ी वाली गुलाबी कनेर का फूल देखिए। प्रत्येक पंखुड़ी के ऊपर, अन्दर वाले भाग पर, फूल के केन्द्र में, जो धागेनुमा रचनाएँ लगी होती हैं वही इसका करोना है। यह एक चौड़े खुले कप के रूप में नज़र आता है।

अमरबेल एक प्रसिद्ध परजीवी बेल है। आमतौर पर हमारा ध्यान इसके फूलों की ओर नहीं जाता। इस सुनहरी पीली धागेनुमा बेल पर पत्तियाँ तो नहीं होतीं पर समय आने पर जो ढेर सारे फूल लगते हैं उनमें झालरदार करोना होता है।

कौरव-पाण्डव, जिसे झुमकलता या राखी फूल भी कहते हैं, में सुन्दर चितकबरा एवं सूर्य की किरणों की तरह फैला हुआ जामुनी सफेद करोना मिलता है। इसमें पाँच पंखुड़ियाँ होती हैं जिनके ऊपरी हिस्से पर किरणों जैसा चक्रीय करोना लगा रहता है। इसमें करोना बड़ी संख्या में होते हैं, अतः इन्हें कौरव तथा पाँच पुंकेसरों को पाण्डव कहा जाता है। उपमाओं को थोड़ा और विस्तार देते हुए कुछ लोग इसकी वर्तिका को द्रौपदी भी कहते हैं क्योंकि वह एक ही होती है और पाँच पुंकेसरों यानी पाण्डवों से घिरी रहती है। आपने भी ज़रूर यह फूल देखा होगा और आप भी इस फूल की सुन्दरता, रचना व रंग संयोजन के कायल होंगे।

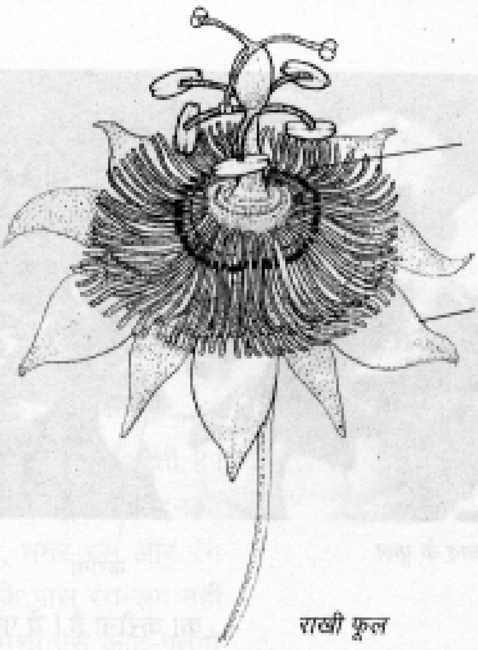

राखी फूल

परन्तु सबसे सुन्दर व रंगीन करोना तो हल्दी कंकू (काका तुण्डी) के पौधों में मिलता है। इसे बगीचों में इसके सुन्दर फूलों के लिए लगाया जाता है। वनस्पति विज्ञानी इसे *एस्क्लेपिया* कहते हैं। इसके फूल लाल-पीले रंग के होते हैं, जो इसके नाम हल्दी-कुंकू को सार्थक बनाते हैं। इनमें पंखुड़ियाँ उल्टी छतरी के रूप में और करोना गहरे पीले रंग की अन्दर की ओर मुड़ी हुई पाँच रचनाओं के रूप में दिखता है। इसका करोना पुंकेसरीय है। करोना से एक-एक पीले रंग की सींगनुमा रचना भी निकली होती है जो मकरन्द स्रवित कर संग्रह करती है।

लेकिन इस सुन्दरता के साथ इसमें एक खतरा भी छिपा है, दूधिया रस के रूप में। इसमें केलोट्रॉपीन नामक एक पदार्थ होता है जो बहुत ज़हरीला है। रोचक बात यह है कि मोनार्क तितली इसके इस ज़हर का बखूबी उपयोग कर लेती है। मोनार्क तितलियाँ अपने अण्डे इस पर देती हैं जिससे ज़हरीले लार्वा एवं तितलियाँ पनपती हैं, जिन्हें शिकारी पक्षी नहीं खाते।

वर्ड्सवर्थ की प्रसिद्ध कविता के केन्द्र बिन्दु, सुन्दर फूल डेफोडिल में भी करोना दिखाई देता है। इसके सुन्दर गहरे पीले रंग का कपनुमा करोना फूल के समस्त चक्रों के एकदम बीच में पाया जाता है। इस पर ही चक्र के रूप में छह पुंकेसर लगे होते हैं। इस कुल के सब फूलों में करोना होता है – या तो पंखुड़ियों के रंग का या उनसे ज़्यादा गहरा।

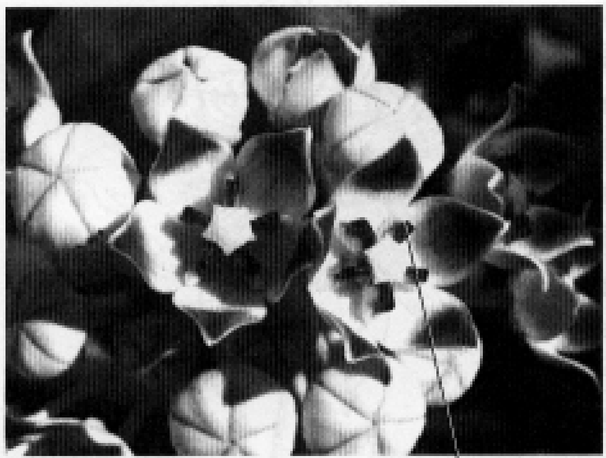

अकाव के फूल

करोना की बात अकाव (आँकड़ा) के ज़िक्र के बिना पूरी नहीं हो सकती। अकाव एक सामान्य जंगली झाड़ी है। इसकी दो प्रजातियाँ हैं। एक छोटी झाड़ी होती है जिसके फूल हल्के जामुनी होते हैं। दूसरी बड़ी झाड़ी होती है जिस पर सफेद रंग के बड़े-बड़े फूल लगते हैं। दोनों में पुंकेसरीय करोना पाया जाता है। हम जामुनी रंग वाले फूल की बात कर रहे हैं। छोटे जामुनी फूल में पाँच चौड़ी पंखुड़ियाँ होती हैं जिनके सिरे थोड़े ज़्यादा गहरे रंग के होते हैं। फूल के केन्द्र की ओर जो पाँच सीधी खड़ी रचनाएँ दिखती हैं वही इस फूल का करोना है। ये पार्श्व रूप से दबी हुई, मांसल, खोखली नलिकाएँ होती हैं जो पुंकेसरीय नलिका से चिपकी रहती हैं। इसके नीचे के भाग में पतली, नुकीली, सींगनुमा संरचना (स्पर) होती है जिससे मकरन्द स्रवित होता है। फूल के ठीक केन्द्र में सितारेनुमा पंचकोणीय रचना वर्तिकाग्र है।

सफेद अकाव में पंखुड़ियाँ ज़्यादा लम्बी, हल्की हरी-सफेद और नीचे की ओर मुड़ी होती हैं। फूल के केन्द्र में ऊपर की ओर उठा हुआ कलात्मक भाग ही इसका करोना है। प्रत्येक करोना एक बहुत ही सुन्दर कर्णफूल जैसी रचना है। इस फूल में सितारेनुमा रचना वर्तिकाग्र व पुंकेसर के संयोग से बनती है।

फूलों में रंग और गन्ध के रसायन

फूलों में रंग और गन्ध की उपस्थिति भी परागण में मददगार होती है। पक्षियों और तितलियों जैसे परागणकर्ताओं को आकर्षित करने में इनकी खास भूमिका है। कई फूलों के पास गन्ध नहीं है, मगर रस और रंग भरपूर हैं। दूसरी ओर ऐसे भी हज़ारों फूल हैं, जिनके पास रंग-रूप नहीं है, परन्तु वे बेमिसाल खुशबू के धनी हैं। इन पर हमेशा ऐसे कीट-पतंगों का मेला लगा रहता है जिनकी आँखें कमज़ोर होती हैं; ये तो बस नाक के भरोसे जीते हैं। अधिकांश फूलों का हाल यह है कि जिनके पास रंग-रूप है, उनके पास गन्ध नहीं है और जिनके पास बेहतरीन गन्ध है, वे बेरंग हैं, जैसे चम्पा, चमेली, मोगरा, रातरानी आदि।

दहकते फूल

यह आश्चर्य की बात है कि जितने भी रंग फूलों में देखने को मिलते हैं, वे कुछ ही रंगीन पदार्थों के मिश्रण से बने होते हैं। कई लाल, नारंगी फूलों में रंगीन रसायन कैरोटीनॉइड होते हैं। ये पत्तियों में मिलने वाली कैरोटीन के समान ही होते हैं।

वैसे फूलों को रंग देने वाले सबसे महत्वपूर्ण पदार्थ फ्लेवनॉइड हैं। फ्लेवनॉइड के रंग फूलों के अलावा कुछ जन्तुओं में भी पाए जाते हैं। पत्तियों में ये अल्ट्रावायलेट विकिरण को अन्दर जाने से रोकते हैं, जो आनुवंशिक पदार्थों और प्रोटीन के लिए हानिकारक

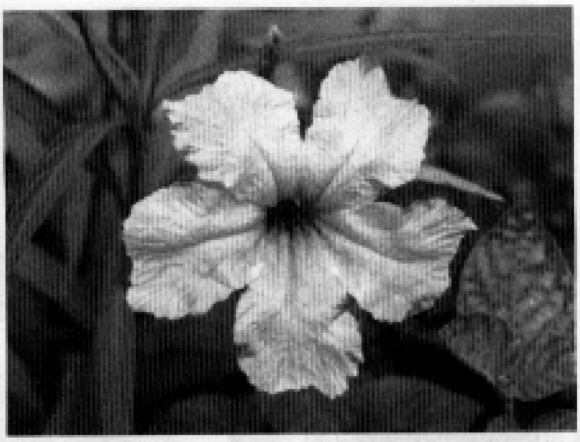

एकेन्थस

होता है। परन्तु ये लाल और नीले रंग के प्रकाश को पत्तियों के अन्दर जाने देते हैं, जो प्रकाश संश्लेषण के लिए ज़रूरी है।

फ्लेवनॉइडों में मुख्य रूप से एन्थोसाइनिन होते हैं। अधिकांश लाल और नीले रंग इन्हीं पदार्थों के कारण होते हैं। ये सभी पानी में घुलनशील हैं और कोशिकाओं के अन्दर रिक्तिकाओं (vacuoles) में भरे होते हैं। दूसरी ओर, कैरोटीनॉइड पानी में नहीं घुलते और प्लास्टिड में पाए जाते हैं। एन्थोसाइनिनों की विशेषता यह है कि इनका रंग माध्यम की pH पर निर्भर करता है। जैसे साइनेडिन अम्लीय माध्यम में लाल, उदासीन माध्यम में जामुनी और क्षारीय माध्यम में नीला दिखाई देगा। अर्थात फूलों का रंग उनमें पाए जाने वाले पिगमेंट और कोशिका रस की pH, दोनों पर निर्भर करता है।

जैसे हर चमकने वाली वस्तु सोना नहीं होती, वैसे ही प्रत्येक लाल रंग एन्थोसाइनिन के कारण हो, ऐसा ज़रूरी नहीं है। कैक्टस कुल और पोरचुलेका कुल के पौधों के फूलों में लाल रंग एक जटिल एरोमेटिक पदार्थ बीटासायनिन के कारण आता है। बोगनवेलिया के लाल फूल और चुकन्दर की जड़ भी इसी से लाल होती है।

फ्लेवनॉइडों का दूसरा समूह फ्लेवनोल है। ये पत्तियों और फूलों में आमतौर से पाए जाते हैं, परन्तु इनमें से अधिकांश रंगहीन हैं। ये फूलों को हाथी दाँत जैसा सफेद रंग प्रदान करते हैं। अर्थात चाँदनी, मोगरा और जूही जैसे फूलों की पंखुड़ियों में फ्लेवनोल समूह के फ्लेवनॉइड ही रंग भरते हैं।

फूलों में रंगों के विभिन्न प्रकार फ्लेवनॉइड और कैरोटीनॉइड के मिश्रण के नतीजे हैं। इसके अलावा, फूलों की पंखुड़ियों की अम्लीयता, क्षारीयता और उनका परावर्तन का गुण भी अपनी भूमिका निभाते हैं। अधिकांश फूलों में अल्ट्रावायलेट किरणों का परावर्तन कैरोटीनॉइड के कारण होता है। इसलिए अल्ट्रावायलेट पैटर्न अन्य रंगों की अपेक्षा पीले रंग के फूलों में ही अधिकता से पाए जाते हैं।

महकते फूल

ये तो हुई फूलों के रंग की बात। पर गन्ध की चर्चा तो अभी बाकी है। गन्ध का महत्व रात में उड़ने वाले कीट-पतंगों और चमगादड़ों के लिए ज़्यादा है, क्योंकि रात के अँधेरे में वे गन्ध के सहारे ही अपने मनपसन्द फूलों तक पहुँच सकते हैं। कीटों में गन्ध का पता लगाने की क्षमता बड़ी तेज़ होती है। यही कारण है कि जो फूल हमें सुगन्धित नहीं लगते हैं, वे इन्हें दूर से आकर्षित कर लेते हैं। गन्ध की अति सूक्ष्म मात्रा भी तितलियों और मधुमक्खियों को रिझाने के लिए पर्याप्त होती है।

फूलों में गन्ध और पराग कणों के परिपक्व होने के समय के बीच एक सम्बन्ध होता है। अधिकतम गन्ध तभी निकलती है, जब पराग कोश फटने को तैयार होते हैं और जायांग निषेचन के लिए। दिन में परागित होने वाले फूलों में गन्ध दोपहर में और रात में परागित होने वाले फूलों में शाम के समय निकलती है।

फूलों को गन्ध प्रदान करने वाले पदार्थ मुख्य रूप से वाष्पशील तेल होते हैं, जिन्हें टरपीन कहा जाता है। इनके अतिरिक्त सरल अल्कोहल, कीटोन और कुछ एस्टर भी फूलों को सुगन्धित बनाते हैं। नींबू के फूलों में गन्ध लिनोलिन और गुलाब तथा जिरेनियम के फूलों में जिरेनियॉल जैसे पदार्थों से होती है। विश्व प्रसिद्ध वनीला की गन्ध वैनीलीन नामक पदार्थ से पैदा होती है और चम्पा की गन्ध पेन्टाडीकेन के कारण है। कई बार फूलों की गन्ध कई रासायनिक पदार्थों के मिश्रण का परिणाम होती है।

फूलों की गन्ध हज़ारों साल से कीट-पतंगों के अलावा मनुष्यों को भी लुभाती रही है। हालाँकि आजकल संश्लेषित रासायनिक सुगन्धों का ज़ोर है। फिर भी गन्ध के व्यापारियों द्वारा कृत्रिम सुगन्ध को प्राकृतिक रंग देने के लिए उसमें फूलों से प्राप्त गन्ध को मिलाया जाता है। फूलों के गुलदस्तों और परफ्यूम का यह विश्वव्यापी व्यापार करोड़ों डॉलर का है।

गन्ध तो गन्ध, दुर्गन्ध भी लुभाती है

कुछ वर्ष पूर्व सिडनी (ऑस्ट्रेलिया) के वनस्पति उद्यान में विश्व का सबसे बड़ा फूल खिलने का सचित्र समाचार कई अखबारों और समाचार चैनलों में प्रमुखता से प्रकाशित और प्रसारित हुआ था। तीन साल में एक बार खिलने वाले इस विशाल एवं विचित्र फूल को देखने के लिए लोगों की लम्बी कतार लगी थी।

मूल रूप से इण्डोनेशिया के पश्चिमी सुमात्रा के निवासी इस पौधे की ऊँचाई लगभग 2 मीटर होती है और लगभग इतनी ही ऊँचाई का पुष्पक्रम इस पर खिलता है जो लगभग 100 किलो वज़न का और दुर्गन्ध युक्त होता है।

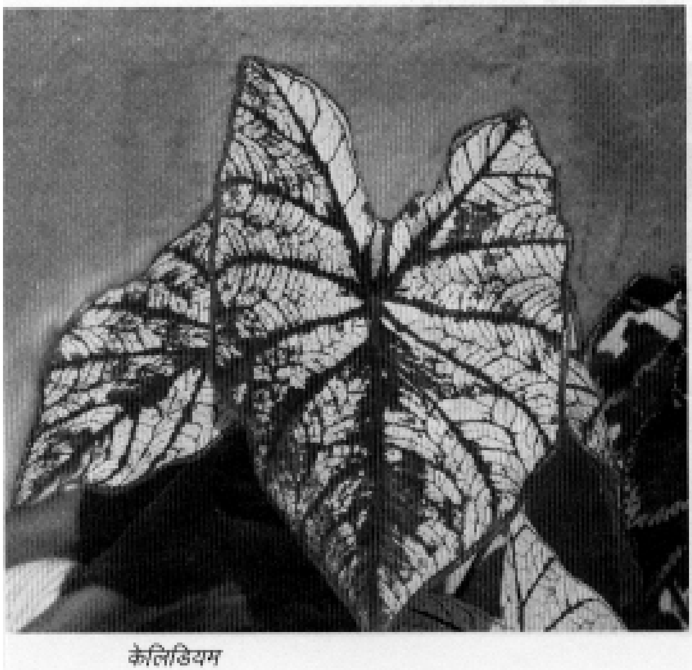

केलिडियम

हम इसे प्रत्यक्ष तो देख नहीं पाएँगे परन्तु दुनिया के इस विशालकाय पुष्पक्रम और इससे निकलने वाली सड़ी मछलियों की गन्ध के राज़ को तो ज़रूर जान सकते हैं। *एमॉर्फोफैलस टाइटेनम* नाम का यह पौधा हमारी परिचित सब्ज़ी अरबी कुल का सदस्य है। इस कुल के कई पौधे हमारे यहाँ बाग-बगीचों व घरों में रंग-बिरंगे और बड़े-बड़े सुन्दर पत्तों एवं पुष्पक्रमों के लिए लगाए जाते हैं। इन्हें *कोलोकेसिया केलिडियम* भी कहते हैं। *एमार्फोफैलस टाइटेनम* का स्थानीय नाम वूडू प्लांट है जिसका अर्थ है टोने-टोटके वाला पौधा। इसकी पत्तियों के धब्बेदार रूप रंग को देखकर कुछ लोग इसे लैपर्ड पाम (तेन्दुआ ताड़) भी कहते हैं।

इसका यह जगप्रसिद्ध पुष्पक्रम (तथाकथित फूल) इसके भूमिगत कन्द से निकलता है। इस पुष्पक्रम को स्पेडिक्स नाम दिया गया है। इसमें एक बहुत बड़ा, झालरदार, गोलाकार, स्कर्ट के आकार का स्पेथ (निपत्र से बना आवरण) होता है। इसके बीचों-बीच एक खम्भे जैसी रचना लगी होती है जो पुष्पक्रम का अक्ष है। इस अक्ष पर निचले हिस्से में छोटे-छोटे नर एवं मादा फूल लगते हैं जो आसानी से दिखाई नहीं देते। यानी वास्तविक फूल छोटे-छोटे होते हैं।

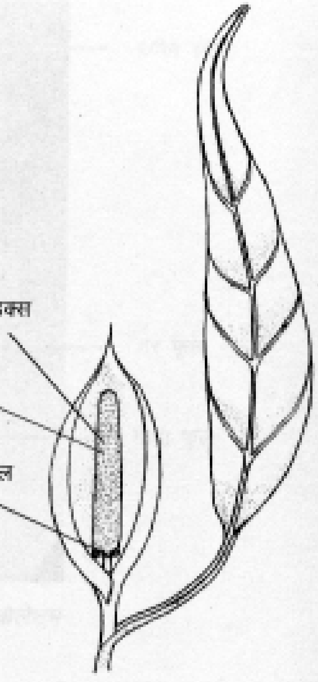

ऐरोइड का पुष्पक्रम

स्पेथ से अप्रिय गन्ध आती है जो इस पर उपस्थित गन्ध ग्रन्थियों (osmophore) से निकलती है। *एमॉर्फोफैलस* के रंगीन गोलाकार स्पेथ पर बड़ी संख्या में गन्ध ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। जो विशेष तकनीक द्वारा रँगने पर स्पष्ट दिखाई देती हैं।

इस विचित्र पुष्पक्रम को सबसे पहले 1878 में प्रसिद्ध वैज्ञानिक एडुआर्डो बेसारी ने सुमात्रा में देखा था। वे उसे देखकर आश्चर्यचकित रह गए थे। वे लिखते हैं, "कन्द सहित इसका पुष्पक्रम इतना भारी (लगभग 100 किलोग्राम का) था कि उसे एक जगह से दूसरी जगह ले जाने के लिए बाँस के बीचों-बीच बाँधा जाता था जिसके सिरों को दो लोग अपने कन्धों पर टिकाकर फूल को ढोते थे। पुष्पक्रम का घेरा इतना बड़ा होता है कि उसे दोनों बाँहें फैलाकर भी घेरे में नहीं लिया जा सकता।"

सन् 1879 में इस पौधे का सचित्र वर्णन इटली की एक शोध पत्रिका में छपा था। तभी से दुनिया भर के वनस्पति उद्यान इस अनोखे पौधे को अपने बगीचे में उगाने के लिए प्रयत्नशील हो उठे। इसके कुछ पौधे फ्लोरेन्स के वनस्पति संरक्षण उद्यान और कुछ पौधे लन्दन के क्यू बॉटेनिकल गार्डन में उगाए गए। इसी तरह सन् 1932 में इसका एक कन्द न्यू यॉर्क के वनस्पति उद्यान में भी लगाया गया था।

सुमात्रा के बाहर *एमॉर्फोफैलस* का पहला पुष्पक्रम जून 1887 में क्यू गार्डन में खिला था जिसे देखने के लिए भारी भीड़ इकट्ठा हुई थी। इसे लेकर सबसे ज़्यादा हंगामा उस समय हुआ जब यह पुष्पक्रम न्यू यॉर्क के वनस्पति उद्यान में दिखा। 26 मई 1937 को जैसे ही जनता को पता चला कि यह फूल खिलने वाला है, हज़ारों की तादाद में लोग इसे देखने उमड़ पड़े। 11 दिन के लम्बे इन्तज़ार के बाद 7 जून के दिन पुष्पक्रम खिला।

इस पुष्प समूह का घेरा 13 फीट और व्यास 4 फीट था। पुष्पक्रम के निचले भाग को काटकर वहाँ एक खिड़की बना दी गई थी ताकि उसके भीतरी हिस्सों का अध्ययन किया जा सके।

ऐसा नहीं है कि ये विचित्र पुष्पक्रम सिर्फ विदेशों में ही खिलते हैं। हमारे यहाँ भी इसकी कुछ प्रजातियाँ सदाबहार और पतझड़ी जंगलों में बरसात के दिनों में देखी जा सकती हैं। इनमें *एमॉर्फोफैलस कैम्पेनुलेटस* प्रमुख है। इसका कन्द सूरण या जमीकन्द के नाम से खाया जाता है। कन्द 3-4 किलो से भी ज़्यादा बड़े होते हैं।

एमॉर्फोफैलस के पुष्पक्रम को वनस्पति शास्त्री स्पेडिक्स कहते हैं और विचित्र रंग-रूप के आधार पर उन्हें अलग-अलग नाम दिए गए हैं। जैसे *एमॉर्फोफैलस बल्बीफेरा* को डेविल्स टंग (शैतान की जीभ), *एमॉर्फोफैलस करोगेट्स* को *स्नेक पाम* (सर्प ताड़), *एमॉर्फोफैलस हिल्डेनब्राण्डी* को ड्रेगन लिली (दैत्य लिली) आदि।

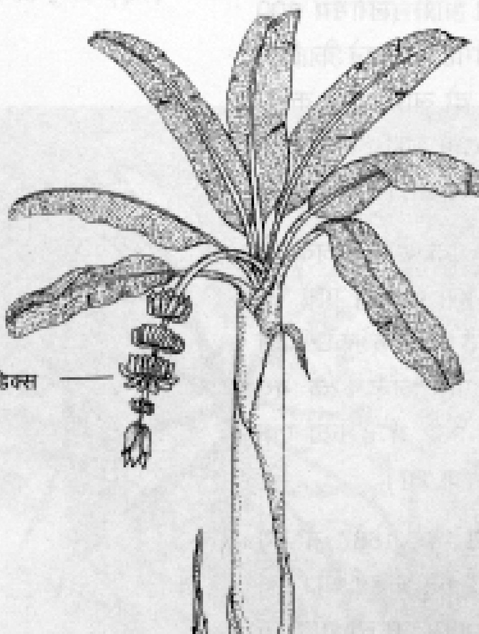

केला

इनके रूप रंग के बारे में तो इनके नाम से ही पता चल जाता है परन्तु इनकी कारगुज़ारियाँ तभी पता चलती हैं जब इनकी जाँच पड़ताल ज़रा गहराई से की जाए। वस्तुतः ये सभी ऐसे पुष्प हैं जो अपना काम निकालने के लिए कई छोटे-मोटे कीट पतंगों को बन्धुआ मज़दूर बनाते हैं और अपना काम – यानी फूलों का परागण – पूरा होने तक उन्हें अपनी कैद में रखते हैं। और तो और, जबरन कराए गए इस काम के बदले कीटों को कोई पारिश्रमिक (मकरन्द या पराग) भी नहीं दिया जाता। ये तो गन्ध के धोखे के शिकार होते हैं।

इस पूरी बात को समझने के लिए इसी कुल के एक पौधे *ऐरम मेस्कलेटम* के पुष्पक्रम की खोजबीन मददगार होगी क्योंकि *एमॉर्फोफैलस* की प्रजातियों में भी यही कहानी दोहराई जाती है।

अपनी दुर्गन्ध का जाल बिछाकर कीटों को

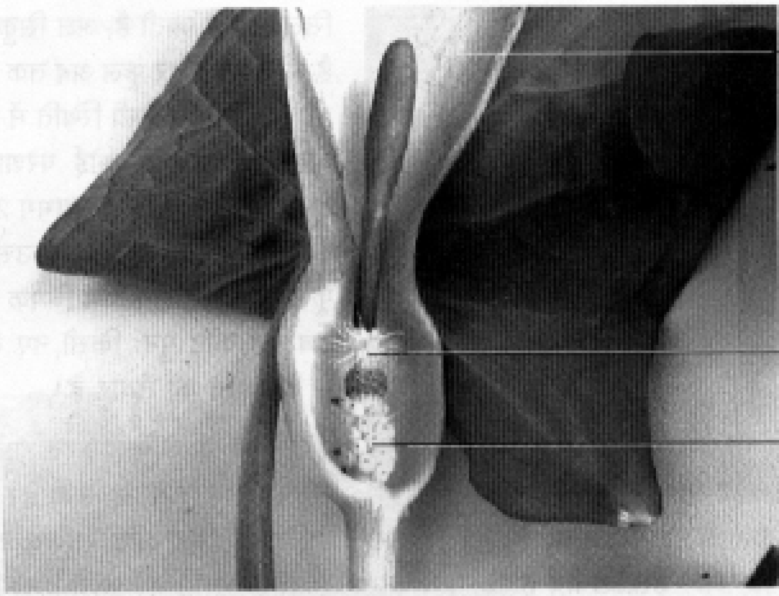

ऐरम मेस्कलेटस

फुसलाने का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण *ऐरम* में देखा गया है। इसके स्पेडिक्स के मुख्य अक्ष पर अनेक डण्ठल रहित फूल लगे होते हैं जो एक बड़ी-सी रंगीन पत्ती (स्पेथ) से घिरे होते हैं। हमारे परिचित केले का पुष्पक्रम भी स्पेडिक्स होता है हालाँकि उसमें बदबू नहीं होती।

ऐरम के स्पेडिक्स के अक्ष पर सबसे ऊपर नर फूल और नीचे मादा फूल लगते हैं। इसका चमकदार बैंगनी स्पेथ रात को खुलता है। दिन में इसके अक्ष का ताप तेज़ी से बढ़ता है और लगभग 30 डिग्री सेल्सियस तक पहुँच जाता है। इतने अधिक ताप के कारण पुष्पक्रम से निकलने वाली वाष्पशील दुर्गन्ध दूर-दूर तक फैल जाती है।

फूल की दुर्गन्ध से आकर्षित हो गुबरैले और सड़े मांस का भक्षण करने वाली मक्खियाँ स्पेडिक्स के अक्ष पर बैठने की कोशिश करती हैं। अक्ष तेल ग्रन्थियों की उपस्थिति के कारण बहुत चिकना होता है। अतः ये कीट फिसलकर सीधे नीचे चले जाते हैं। अक्ष पर लगे, नीचे की ओर मुड़े रोएँ इन्हें फिर बाहर नहीं आने देते। यदि इन कीटों पर पूर्व से ही पराग कण चिपके हों, तो वे इसी दौरान नीचे स्थित मादा फूलों पर लग जाते हैं और परागण क्रिया सम्पन्न हो जाती है।

समय के साथ स्पेडिक्स में कई परिवर्तन होते हैं। चिकने स्पेथ पर

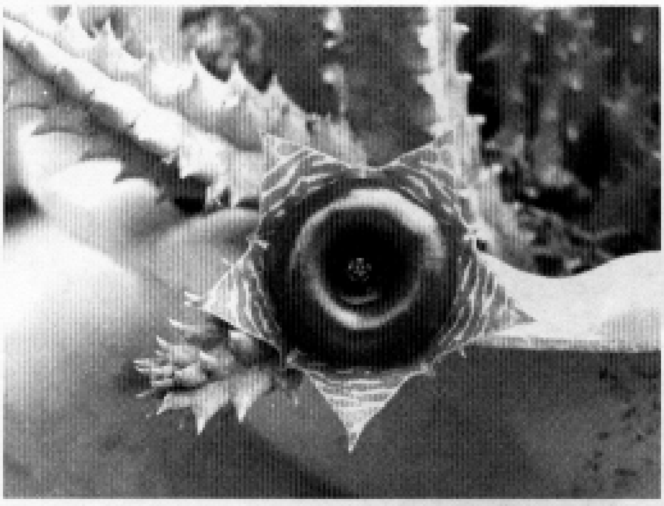

स्टार फ्लावर

सिलवटें पड़ जाती हैं, अक्ष सिकुड़ जाता है और इसके नर फूल अब तक परिपक्व हो चुके होते हैं। ऐसी स्थिति में कीट को बाहर निकलने में कोई परेशानी नहीं होती। ऐसे में जब वह लगभग 24 घण्टों की कैद से मुक्त होता है तो उस पर नर फूलों के ढेरों पराग कण चिपक जाते हैं। अब यह कीट पुनः किसी नए कैदखाने में कैद होने को तैयार है।

कीटों को आकर्षित करने वाली गन्ध लगभग दोपहर में निकलती है। यही वह समय होता है जब मांस प्रेमी मक्खियाँ और कीट सक्रिय रहते हैं। उल्लेखनीय है कि गन्ध का बनना और फैलना नर फूलों द्वारा नियंत्रित होता है। देखा गया है कि यह गन्ध नर फूलों के परिपक्व होने से 6-18 घण्टे पहले निकलती है।

अब तक आपके मन में यह सवाल ज़रूर आया होगा कि ये कीट दुर्गन्ध से क्यों आकर्षित होते हैं। इन फूलों से निकलने वाली दुर्गन्ध का कारण वाष्पशील अमीन हैं जिनकी गन्ध सड़ती हुई मछली जैसी होती है। कुछ ज़्यादा बदबूदार फूलों में डायअमीन भी होते हैं जो सड़ते हुए मांस में भी पाए जाते हैं।

इन पुष्पक्रमों द्वारा 'अप्रिय' गन्ध का उत्पादन वास्तव में पौधों द्वारा की जाने वाली रासायनिक नकलपट्टी का उदाहरण है। इनसे निकलने वाली गन्ध के कारण मांस एवं विष्ठा प्रेमी कीट इन फूलों की तरफ आकर्षित होते हैं। वे बेचारे तो मांस-मछली की दावत उड़ाने आते हैं मगर अन्ततः उनके हाथ कुछ नहीं लगता। हाँ, इस तरह से इन फूलों का परागण ज़रूर सुनिश्चित हो जाता है।

हंसलताः परागण के लिए धोखाधड़ी

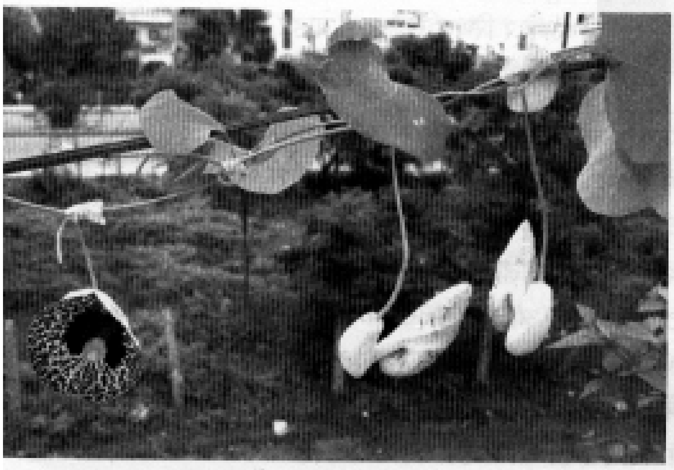

डक फ्लावर

एक दिन अचानक मेरी नज़र पड़ोसी की बागड़ पर पड़ी तो देखा कि वहाँ बत्तख जैसे फूल यहाँ-वहाँ लटके हुए हैं। पास जाकर देखा तो पता चला कि यह तो एक बेल है जिसे बाग-बगीचों में इसके सुन्दर बत्तखनुमा फूलों के लिए लगाया जाता है। वनस्पति शास्त्री इसे *ऐरिस्टोलोकिया क्लिमेटाइटिस* के नाम से पुकारते हैं। इसकी सफेद कलियाँ दूर से वाकई ऐसी दिखती हैं जैसे बेल पर छोटी-छोटी बत्तखें या हंस लटके हों।

इसका बंगाली नाम हंसलता सचमुच बड़ा सार्थक है। इसके फूल का अगला हिस्सा चोंच जैसा, बीच का S के आकार का मुड़ी हुई गर्दन-सा और शेष हंस के शरीर जैसा दिखता है। ये सब मिलकर इसे बिलकुल 'डक फ्लावर' बना देते हैं। बत्तख की चोंच वाला हिस्सा बेल से जुड़ा होता है। फूल का अन्दरूनी हिस्सा बहुत सुन्दर जामुनी रंग का होता है, जिस पर कमाल की चित्रकारी होती है। बेल पर क्रम से खिले फूल व पीछे लगी कलियाँ देखकर ऐसा लगता है कि हंस सपरिवार हवा में तैर रहे हों।

हंसलता के फूलों की आकृति ही विचित्र नहीं है, इन फूलों का व्यवहार भी रोचक है। ये फूल छोटी-छोटी मक्खियों को अपने मतलब के लिए बन्धुआ मज़दूर बनाकर रखते हैं। ये कीट इसकी मदहोश कर देने वाली सुगन्ध से आकर्षित होकर इसके जाल में फँसते हैं। इस तरह के फूलों को 'पिटफॉल फ्लावर' कहते हैं, क्योंकि कीटों को ये अपने फूलों में बनी

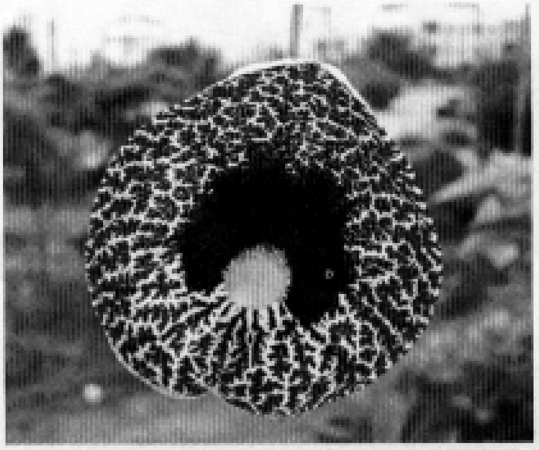

डक फ्लावर पर चित्रकारी

गहरी खाई में गिराते हैं। इस तरह के फूलों की एक बानगी हम पिछले लेख में देख ही चुके हैं।

वैसे तो इसके फूल द्विलिंगी होते हैं परन्तु खिलने के समय ये मादा अवस्था में होते हैं। इस अवस्था में फूल सीधा खड़ा रहता है तथा मक्खियाँ इसकी सुगन्ध के वशीभूत फूल की नली से गुज़रकर नीचे की ओर चली जाती हैं। नली के अन्दर स्थित रोएँ इन्हें बाहर नहीं आने देते। अतः ये कीट वहीं कैद हो जाते हैं।

दो दिन बाद जब फूल का मादा भाग सूखने लगता है तो इस पर लगे कड़क रोएँ नर्म पड़ने लगते हैं। फूल के पराग कोश भी परिपक्व होकर फट चुके होते हैं। अतः अब फूल मादा से नर अवस्था में आ जाता है। और नीचे की ओर लटक जाता है। अब कीट का बाहर आना आसान हो जाता है। कीट जब बाहर आते हैं तो उनके शरीर पर इस फूल के खूब सारे पराग कण चिपके रहते हैं। जब ये कीट पुनः किसी फूल की गन्ध के सम्मोहन में एक बार फिर कैद होने के लिए जाते हैं, तो उन ताज़ा मादा फूलों का परागण हो जाता है। यह क्रम इसी तरह चलता रहता है।

पंखुड़ियों से बने लैण्डिंग प्लेटफॉर्म

अनादि काल से उड़ रहे कुछ हवाई मुसाफिरों के लिए प्रकृति ने भी लैण्डिंग प्लेटफॉर्म बनाए हैं। ये नयनाभिराम व रंग-बिरंगे प्लेटफॉर्म ज़मीन की बजाय प्रकृति की सुन्दरतम कृति फूलों पर स्थित हैं और इन पर उतरने वाले मुसाफिर हैं मधुमक्खियाँ, तितलियाँ और भँवरे।

लैण्डिंग प्लेटफॉर्म अधिकतर ऐसे फूलों में मिलते हैं जिनका परागण कीटों, खासतौर पर मधुमक्खियों और तितलियों द्वारा होता है। पेड़-पौधों के लिहाज़ से मधुमक्खियाँ सबसे ज़्यादा भरोसेमन्द परागणकर्ता हैं क्योंकि इनका तो भोजन ही मकरन्द और पराग है। नर और मादा दोनों मधुमक्खियाँ फूलों पर आश्रित हैं। अलबत्ता, मादाएँ मकरन्द के अलावा पराग भी इकट्ठा करती हैं जिसे वे अपनी इल्लियों को खिलाती हैं।

फूल पर लैण्डिंग की तैयारी में मधुमक्खी

देखा गया है कि मधुमक्खियाँ कुछ विशेष फूलों पर ही मँडराती हैं। लगातार एक ही प्रजाति के फूलों से मकरन्द व पराग इकट्ठा करने वाली मधुमक्खियों के शरीर के आकार और शरीर-क्रियाओं में भी परिवर्तन हो जाते हैं। ये स्पष्टतः अनुकूलन के परिणाम होते हैं। इससे उनकी दक्षता बढ़ती है। इन मधुमक्खियों का एक ही प्रजाति के फूलों से लगातार, लम्बा जुड़ाव फूलों

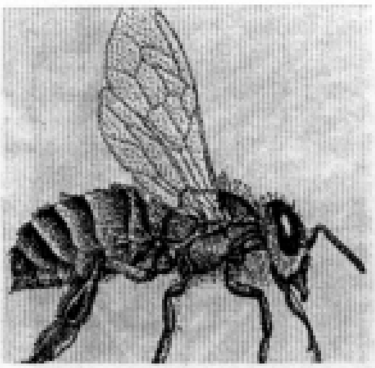

मधुमक्खी की अनुकूलित टाँगें

पर भी एक ऐसा वैकासिक दबाव डालता है जिससे वे भी मधुमक्खियों से परागण के लिए अनुकूलित हो जाते हैं।

फूलों की दुनिया में बी-फ्लावर का विकास ऐसे ही अनुकूलनों का नतीजा है। परन्तु बी-फ्लावर्स की बात करने से पहले बी यानी मधुमक्खियों की शरीर रचना एवं कार्य पर एक नज़र डालना लाज़मी है। दुनिया भर में मधुमक्खियों की लगभग 20,000 प्रजातियाँ ज्ञात हैं। ये सभी अपना भोजन फूलों से जुटाती हैं। छत्ता बनाने वाली मधुमक्खियाँ साल भर में लगभग 25 किलोग्राम पराग कण और 35 किलोग्राम मकरन्द इकट्ठा करती हैं। ज़ाहिर है, छत्ते में हज़ारों की संख्या में रहने वाली इन मधुमक्खियों को इस हेतु फूलों के कई चक्कर लगाने पड़ते हैं। एक अनुमान के मुताबिक एक औसत आकार के छत्ते के सदस्यों को कुल मिलाकर चार-चार किलोमीटर के 43 लाख चक्कर लगाने पड़ते हैं।

स्पष्ट है कि ये चक्कर व्यर्थ नहीं जाते – न मधुमक्खियों के लिहाज़ से और न फूलों के लिहाज़ से। नए-नए छत्तों व नए-नए पेड़-पौधों के कारण यह चक्कर चलता ही रहता है।

इतना ढेर सारा मकरन्द और पराग इकट्ठा करना और उसे अपने छत्तों तक लाना कोई मज़ाक नहीं है। इन दोनों कामों को बखूबी अंजाम देने के लिए मधुमक्खियों की शरीर रचना और आकार दोनों में समय के साथ कई परिवर्तन आए हैं। जैसे इनके मुखांग आपस में जुड़कर एक नलिकानुमा रचना में बदल गए हैं। इस नली के अन्दर इनकी जीभ रहती है। मधुमक्खी का पूरा शरीर रोमयुक्त होता है जिस पर पराग कण चिपक जाते हैं। मज़दूर मादा मधुमक्खी की टाँगें तो पराग कणों को इकट्ठा करने के लिए भलीभाँति अनुकूलित हैं। इनकी तीन जोड़ी टाँगों के पहले खण्ड पर अन्दर की ओर रोमों का एक गुच्छा होता है तथा पहली और दूसरी जोड़ी टाँगों पर पराग ब्रश होते हैं। इनका काम पूरे शरीर पर यहाँ-वहाँ चिपके पराग कणों को बुहारना है। तीसरी जोड़ी टाँगों पर स्थित रोएँ एक पराग कंघी बनाते हैं जो पराग ब्रश और पंखों से पराग कणों को बुहारकर पराग टोकरी में जमा करते हैं। तीसरी जोड़ी टाँग के ऊपर के

खण्ड को पराग टोकरी नाम दिया गया है। फूलों से पराग कण एकत्रित करने की इस क्रिया के दौरान अनायास ही परागण क्रिया हो जाती है।

एपिस मेलीफेरा

करोड़ों सालों से फूलों का मकरन्द चुराते-चुराते इन मधुमक्खियों की सूँड पहले से कहीं ज़्यादा लम्बी हो गई है। इस कारण से ये अब अन्य फूलों से भी मकरन्द प्राप्त कर सकती हैं। अध्ययनों से पता चला है कि पराग कण एकत्रित करने और वितरित करने वाले सहायक अंग भी ज़्यादा विकसित एवं कार्यक्षम हो चुके हैं। पराग कंघी और पराग टोकरी का विकास भी यही कहानी कहता हैं। इनकी मोम ग्रन्थियाँ व मैक्सीलरी ग्रन्थि भी ज़्यादा कार्यक्षम हो चुकी है। सामान्य मधुमक्खी *एपिस मेलीफेरा* की सूँड सभी मधुमक्खियों से ज़्यादा लम्बी पाई गई है। इसकी लम्बाई 7.2 मि.मी. तक होती है। अतः यह लम्बे नलिकाकार फूलों से भी मकरन्द प्राप्त कर लेती है।

करोड़ों सालों से फूलों के साथ रहते-रहते जब मधुमक्खियों में कई अनुकूलन विकसित हुए हैं तो यह कैसे सम्भव है कि फूल इससे बचे रहें। ऐसे ही सहविकास का नतीजा हैं बी-फ्लावर्स यानी वे फूल जिनका परागण केवल मधुमक्खियों द्वारा होता है। बी-फ्लावर्स नीले या पीले रंग के होते हैं। इन फूलों की मकरन्द ग्रन्थियाँ फूलों की पंखुड़ियों से बनी नली में सबसे अन्दर स्थित होती हैं। यहाँ से मकरन्द निकालना हर किसी के बस की बात नहीं होती। केवल चूसने वाले मुखांगों से लैस मधुमक्खियाँ ही यह काम कर पाती हैं। इन फूलों में ऐसे कुछ दिशा निर्देशक चिन्ह भी होते हैं जो यह संकेत देते हैं कि फूल में मकरन्द कहाँ पर है। इन्हें हनी गाइड (मधुदर्शक) कहते हैं।

इन फूलों में एक लैण्डिंग प्लेटफॉर्म भी होता है। यह प्लेटफॉर्म फूल की एक पंखुड़ी के ही रूपान्तरण से बनता है। इस पर रंग-बिरंगे छींटे और धारियाँ भी होती हैं। मटर कुल के कई पौधों के फूलों पर लैण्डिंग प्लेटफॉर्म होते हैं। जैसे पार्किन्सोनिया, इमली और मटर। इन फूलों की

अडूसा के द्विओष्ठीय फूल

पाँच में से एक पंखुड़ी लैण्डिंग प्लेटफॉर्म का काम करती है। यह पंखुड़ी आकार, प्रकार, रंग-रूप में अन्य चार पंखुड़ियों से अलग होती है। कीटों के सुरक्षित लैण्डिंग के लिए ज़रूरी है कि ये प्लेटफॉर्म मज़बूत हों और दूर से ही साफ दिखाई दें। यही कारण है कि यह पंखुड़ी अन्य की तुलना में थोड़ी छोटी, मोटी, ऊपर उठी हुई तथा ज़्यादा रंगीन होती है।

इसके अलावा अडूसा, कालमेघ एवं तुलसी कुल के कई पौधों के फूलों में लैण्डिंग प्लेटफॉर्म होते हैं। इनके फूल द्विओष्ठीय होते हैं, अर्थात् इनकी पाँच पंखुड़ियाँ जुड़कर एक ऐसी नलीनुमा रचना बनाती हैं जिसका खुला सिरा दो होंठों जैसा दिखता है। अडूसा और साल्विया में ऊपरी होंठ छोटा और निचला होंठ बड़ा होता है। यह निचला होंठ ही लैण्डिंग प्लेटफॉर्म का काम करता है।

मटर व चने जैसे पौधों के फूल तितली के आकार के होते हैं। इन फूलों की सबसे बड़ी पंखुड़ी परागणकर्ता कीटों को आकर्षित करने का काम करती है। इसे स्टैण्डर्ड या पताका पंखुड़ी कहते हैं। इसके दोनों ओर की पंखुड़ियाँ पंख (विंग्स) कहलाती हैं और बीच की दो छोटी पंखुड़ियाँ नाव के आकार की होती हैं। फूलों की यह बनावट कीट परागण के लिए सर्वथा अनुकूल है। पताका पंखुड़ी से आकर्षित होकर जैसे ही कोई कीट (मुख्यतः मधुमक्खी) फूल के पास आती है तो विंग्स उसे बैठने की जगह देते हैं। इन तितलीनुमा फूलों में ये विंग्स ही लैण्डिंग प्लेटफॉर्म का काम करते हैं। कीट के बैठने से विंग्स पर दबाव पड़ता है जिससे पुंकेसर की नली और वर्तिका झुककर बाहर आ जाती है। जब मधुमक्खी मकरन्द प्राप्ति के लिए अपनी सूँड पताका पंखुड़ी के पीछे वाले हिस्से में डालती है तो पराग कण इसके सिर पर चिपक जाते हैं।

उपरोक्त दो-बीजपत्री पौधों की तरह लैण्डिंग प्लेटफॉर्म कुछ एक-बीजपत्री पौधों में भी पाए जाते हैं, जैसे ऑर्किड के फूल। इन फूलों में पाँच की बजाय छह पंखुड़ी जैसी रचनाएँ होती हैं। दरअसल इन फूलों की अंखुड़ियाँ और पंखुड़ियाँ प्रायः एक ही रंग की होती हैं। इन्हें परिदल कहते हैं। दोनों तीन-तीन की संख्या में होती हैं। इनमें से एक पंखुड़ी जिसे लिप या लेबेलम कहते हैं, अपेक्षाकृत बड़ी और सुन्दर होती है। यही पंखुड़ी ऑर्किड फूलों में लैण्डिंग प्लेटफॉर्म का काम करती है।

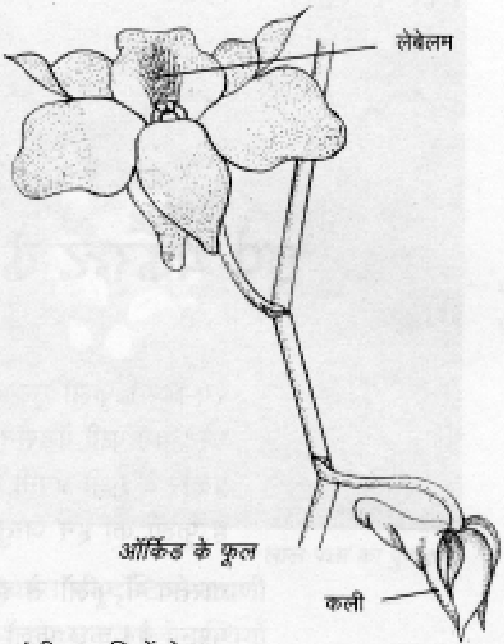

ऑर्किड के फूल

जो ऑर्किड मधुमक्खियों से परागित होते हैं उनके फूल भड़कीले रंग व आला सुगन्ध वाले होते हैं। ये दिन में खुलते हैं और अपने मेहमान को लैण्डिंग प्लेटफॉर्म पर जगह देने के साथ-साथ रंगीन धारियों के रूप में बने मधुदर्शक के ज़रिए मकरन्द के खज़ाने का रास्ता भी बताते हैं। अब यदि आप किसी फूल पर मधुमक्खी को बैठा देखें तो प्रकृति द्वारा फूलों पर बनाए गए इन लैण्डिंग प्लेटफॉर्म को देखना न भूलें।

छुपे मकरन्द के पथ प्रदर्शक – हनी गाइड

रंग-बिरंगे फूलों पर सुबह होते ही तितलियाँ, भँवरे, मधुमक्खियाँ और छोटे-बड़े पक्षी मँडराने लगते हैं। क्या करते हैं ये उन पर जाकर? विभिन्न प्रकार के पक्षी अपनी चोंच फूलों में डालकर क्या तलाशते हैं? क्या रिश्ता है फूलों का इन जन्तुओं से?

वास्तव में फूलों से इन कीट-पतंगों और पक्षियों का रिश्ता लाखों वर्ष पुराना है। कुछ फूलों में तो यह रिश्ता इतना पक्का हो चुका है कि हर एक जाति के फूल पर मँडराने के लिए एक विशेष प्रकार का कीट या पक्षी तय है।

कीट-पतंगे और पक्षी फूलों पर भोजन की तलाश में जाते हैं। फूलों से इन्हें प्रोटीन युक्त पराग कण और शर्करा से भरपूर मकरन्द मिलता है जो इनका पसन्दीदा आहार है। परन्तु इस मकरन्द को चुराना आसान नहीं होता।

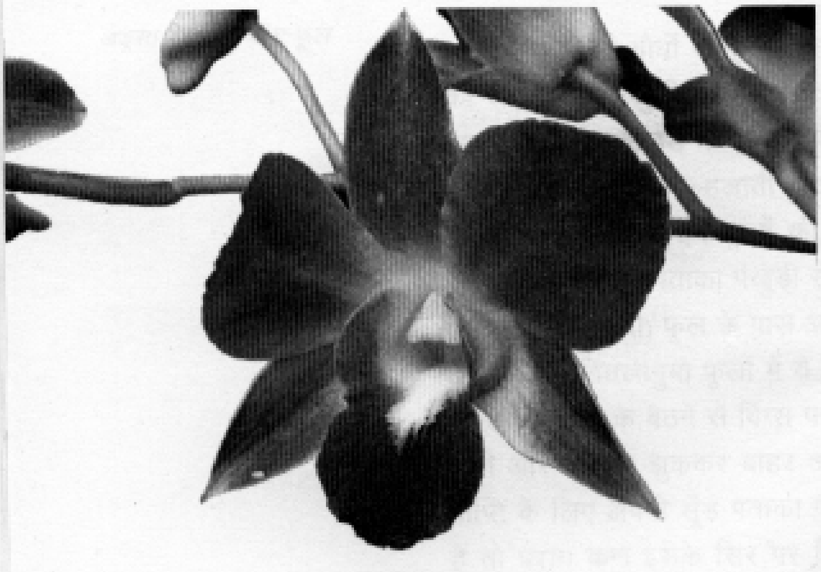

ऑर्किड

मकरन्द विशेष प्रकार की ग्रन्थियों में बनता है। इनकी ऊपरी सतह छिद्रमय होती है जहाँ से मधु निकलता रहता है। यही कारण है कि यह सतह चमकीली व चिपचिपी नज़र आती है। अक्सर ये ग्रन्थियाँ फूलों के पिछले भाग में होती हैं और इन्हें ढूँढना आसान नहीं होता। यहीं मधु-दर्शक (honey guides) काम आते हैं। परन्तु मधुदर्शकों

पर चर्चा करने से पहले ज़रा यह तो पता लगा लें कि मधु ग्रन्थियाँ कहाँ-कहाँ और कितने प्रकार की होती हैं।

लाल पत्ता का पुष्पक्रम

मकरन्द ग्रन्थियाँ

एबुटीलोन जैसे फूलों में मकरन्द ग्रन्थियाँ पंखुड़ी के आधार पर मिलती हैं, तो *रैननकुलस* में पंखुड़ी के पास और वायोला के सुन्दर गहरे नीले या जामुनी फूलों में परागकोश के नीचे। विकास की दृष्टि से अग्रणी माने जाने वाले फूलों में तो कुछ पुंकेसर ही वन्ध्य होकर मकरन्द ग्रन्थियों में परिवर्तित हो गए हैं। बेशरम के फूलों में मकरन्द ग्रन्थि अण्डाशय के नीचे एक गोल चकती के रूप में होती है। सदाबहार के फूलों में दो लम्बी जीभ के आकार की मकरन्द ग्रन्थियाँ अण्डाशय के दोनों ओर पाई जाती हैं।

बगीचों में सुन्दरता के लिए लगाए जाने वाले लाल पत्ता (*यूफोर्बिया पल्चेरीमा*) में तो ये बहुत बड़ी-बड़ी होती हैं। इन्हें छुपाने के लिए इसके पास पंखुड़ियाँ ही नहीं होतीं। पुष्पक्रम के बाहरी हिस्से पर छोटे-छोटे पीले रसभरे प्यालों के आकार की मकरन्द ग्रन्थियाँ दूर से ही नज़र आती हैं। प्यालों में भरा मकरन्द आप छूकर देख सकते हैं, चख भी सकते हैं। यह सुगन्धित और स्वादिष्ट होता है।

ऑर्किड के फूलों में भी कई तरह की मकरन्द ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। ये फूलों और फूलों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर भी पाई जाती हैं। फूलों पर पाई जाने वाली ग्रन्थियों को फ्लोरल ग्रन्थियाँ और अन्यत्र पाई जाने वाली ग्रन्थियों को एक्स्ट्राफ्लोरल ग्रन्थियाँ कहते हैं। कुछ फूलों में ये लम्बे स्पर के आधार पर पाई जाती हैं, तो *एपीडेण्ड्रम* में लम्बे नलिकाकार अण्डाशय के दोनों ओर मिलती हैं। एक्स्ट्राफ्लोरल मकरन्द ग्रन्थियाँ पुष्प कलिका या पुष्पक्रम पर होती हैं। ये प्रायः उथली प्यालेनुमा होती हैं और फूलों के आधार पर मिलती हैं।

एक्स्ट्राफ्लोरल मकरन्द ग्रन्थियाँ

कद्दू के फूल इसके फल ही की तरह बहुत बड़े होते हैं। इनकी बेलें तो द्विलिंगी होती हैं परन्तु इन पर लगने वाले फूल एकलिंगी हैं। अर्थात एक ही बेल पर नर फूल अलग और मादा फूल अलग।

बेलों पर फूल खिलने का क्रम भी निश्चित है। पहले मादा और फिर दोनों साथ-साथ। नर फूल आसानी से दिखाई पड़ते हैं। नर फूलों पर सुनहरे-पीले कणों के रूप में ढेर सारे पराग कण रहते हैं। पुंकेसरों के नीचे वाले हिस्से में मकरन्द ग्रन्थियाँ होती हैं जिनसे मकरन्द निकलता रहता है। पराग कण बड़े, चिपचिपे और समूहों में रहते हैं।

मादा फूल पत्तियों के वक्ष में अकेले खिलते हैं। इनमें भी मकरन्द ग्रन्थियाँ होती हैं। मादा फूल नर फूलों की तुलना में कम खिलते हैं और आसानी से दिखाई भी नहीं देते।

कद्दू के फूलों पर अक्सर मधुमक्खियों, भँवरों, कीटों आदि को मँडराते देखा जा सकता है। ये कीट इन फूलों पर पराग और मकरन्द की तलाश में आते हैं। जब ये नर फूल से मकरन्द चूसकर उड़ते हैं तो चिपचिपे पराग कण इन पर चिपक जाते हैं। मादा फूल पर मकरन्द की तलाश के दौरान ये परागकण वर्तिका पर चिपक जाते हैं।

इन बेलों में कई जगह, विशेषकर अग्र सिरों पर, पत्तियों की कोख में एक्स्ट्राफ्लोरल मकरन्द ग्रन्थियाँ पाई जाती हैं। इन पर अक्सर चींटियाँ आती जाती रहती हैं। माना जाता है कि ये चींटियाँ मकरन्द की सौगात के बदले कुतरने वाले जीवों और फफूँद से इन बेलों की रक्षा करती हैं।

बुल्स हॉर्न अकेसिया

फूलों के अतिरिक्त पाए जाने वाले मकरन्द कोश का स्राव अपेक्षाकृत कड़ुवा होता है तथा इनका कार्य भी अलग होता है। बुल्स हॉर्न अकेसिया की पत्तियों के डण्ठल पर दो-तीन छिद्रनुमा मकरन्द ग्रन्थियाँ होती हैं जिनमें चींटियाँ स्थाई रूप से निवास करती हैं। इन मधु ग्रन्थियों से चींटियों को भोजन मिलता है और बदले में पौधों को अन्य हानिकारक जीवों से सुरक्षा। एक्स्ट्राफ़्लोरल मधु ग्रन्थियों पर अक्सर चींटियों को ही चक्कर लगाते देखा गया है। इनका पौधों से यह सम्बध भी स्थायी है। इन पौधों में मधु तब ही बनता है जब पौधों को सुरक्षा की ज़रूरत होती है। यही कारण है कि सक्रिय मधु ग्रन्थियाँ नई-नई शाखाओं, पत्तियों और खिलते हुए फूलों के आसपास ही बनती हैं। इस तरह की मकरन्द ग्रन्थियाँ गिलकी की बेलों में अक्सर देखी जा सकती हैं। चींटियाँ इन पौधों को मधु के बदले अन्य दुश्मनों, जैसे कुतरने वाले जन्तुओं, कीटों, चरने वाले जन्तुओं और फफूँद के बीजाणुओं से सुरक्षा प्रदान करती हैं।

मधु दर्शक – मकरन्द के पथ प्रदर्शक

अधिकांश फूलों में मकरन्द ग्रन्थियाँ फूलों के अन्दर गहराई में कहीं छिपी होती हैं। इन्हें तलाशना आसान नहीं होता। हनी गाइड या गाइड मार्क कुछ फूलों पर पाई जाने वाली वे रचनाएँ हैं, जो उस फूल के परागणकर्त्ता को केन्द्र का रास्ता दिखाती हैं जहाँ पुंकेसर, अण्डाशय और मधु ग्रन्थियाँ स्थित होती हैं। ये फूलों की रंग योजना का ही एक हिस्सा होती हैं और गहरे रंग के छींटों से लेकर गहरी लम्बी धारियों तक किसी भी रूप में हो सकती हैं। ये मधुमक्खी द्वारा परागित फूलों में विशेष रूप से मिलती हैं।

उन फूलों की पंखुड़ियों पर मकरन्द की तलाश में आने वाली मधुमक्खियों की मदद के लिए विशेष चिन्ह होते हैं जो परागण के लिए मधुमक्खियों के भरोसे हैं। ये चिन्ह हमें दिखें न दिखें, मधुमक्खियों को तो साफ नज़र आते हैं। ये उन्हें मकरन्द ग्रन्थियों की सही स्थिति बताते हैं ताकि उन्हें भटकना न पड़े। फूल पर बैठते ही उन्हें पता लग जाता है कि अब आगे किधर जाना है।

वैसे कुछ हनी गाइड तो हमें साफ दिखाई देते हैं; जैसे फॉक्स ग्लोव (*डिजिटेलिस परप्यूरिया*), अफीम तथा *स्ट्रेप्टोकार्पस* में आसमानी रंग के फूलों पर पीले धब्बों के रूप में या *सिम्बोलेरिया म्यूशलिस* और अडूसा के सफेद फूलों पर कत्थई रंग की धारियों के समान। ये पंखुड़ियों पर विशेष स्थान पर बने होते हैं। फॉक्स ग्लोव के फूल घण्टीनुमा और नीले-गुलाबी रंग के होते हैं। इनमें एन्थोसायनिन की सान्द्रता से फूल की घण्टी वाले हिस्से के अन्दरूनी भाग में गहरे रंग के धब्बे या धारियाँ बन जाती हैं। ये चिन्ह कीट को वर्तिका की ओर ले जाते हैं जिसके पीछे मकरन्द भरा होता है।

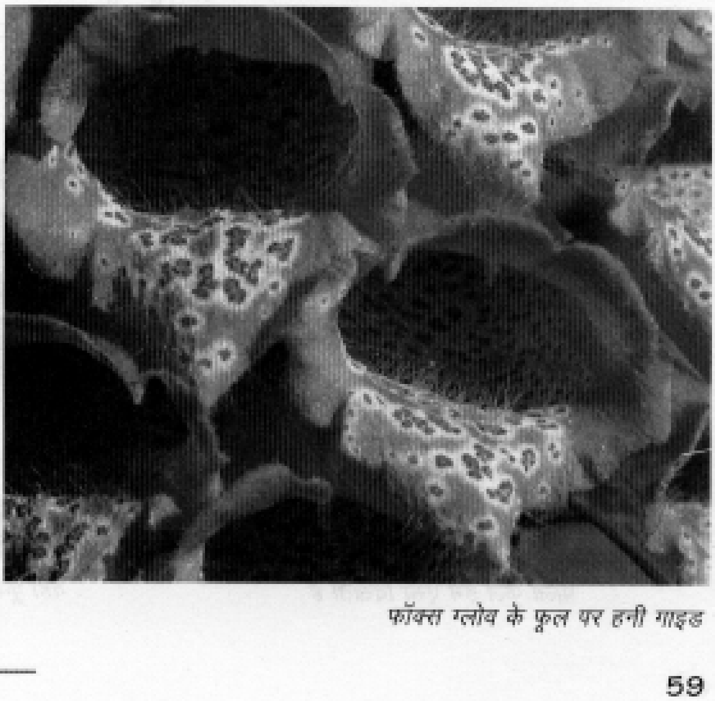

फॉक्स ग्लोव के फूल पर हनी गाइड

अदृश्य हनी गाइड

जो हनी गाइड हमें दिखाई नहीं देते वे अक्सर पीले फूलों में होते हैं। ये फूल हमें तो एकसार दिखते हैं परन्तु मधुमक्खियों को फूल का केन्द्र अपेक्षाकृत गहरे रंग का नज़र आता है।

फूलों में अदृश्य मधु दर्शक होने का पता सर्वप्रथम थॉम्पसन (Thompson) को 1972 में चला था। उन्होंने देखा कि *रुडबेकिया हिर्टा* के पीले फूल सामान्य प्रकाश में तो एक समान पीले दिखते हैं परन्तु पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) प्रकाश में फूलों का अन्दर का हिस्सा गहरे रंग का दिखता है। बाकी हिस्सा सामान्य हल्के रंग का ही दिखता है परन्तु उल्लेखनीय है कि हमारी आँखें पराबैंगनी किरणों के प्रति संवेदी नहीं हैं जबकि मधुमक्खियों की हैं।

रुडबेकिया के फूलों की पंखुड़ियों के इन हिस्सों का रासायनिक विश्लेषण करने पर पता चला कि कैरोटिनॉइड रंजकों के द्वारा पराबैंगनी किरणों के परावर्तन के कारण फूल के बाहरी भाग चमकदार नज़र आते हैं जबकि अन्दर के गहरे रंग वाले भाग में कैरोटिनॉइड के साथ पीले फ्लेवनोल भी होते हैं जो पराबैंगनी किरणों को सोख लेते हैं।

इस तरह *रुडबेकिया* में पीले रंग के रंजकों का स्पष्ट कार्य विभाजन हो गया है। कैरोटिनॉइड पूरे फूल को पीला रंग प्रदान करते हैं जिससे मधुमक्खियाँ दूर से ही आकृष्ट हो जाती हैं। दूसरी ओर, पानी में घुलनशील पीले फ्लेवनोल, जो पंखुड़ी के भीतर वाले हिस्से में होते हैं,

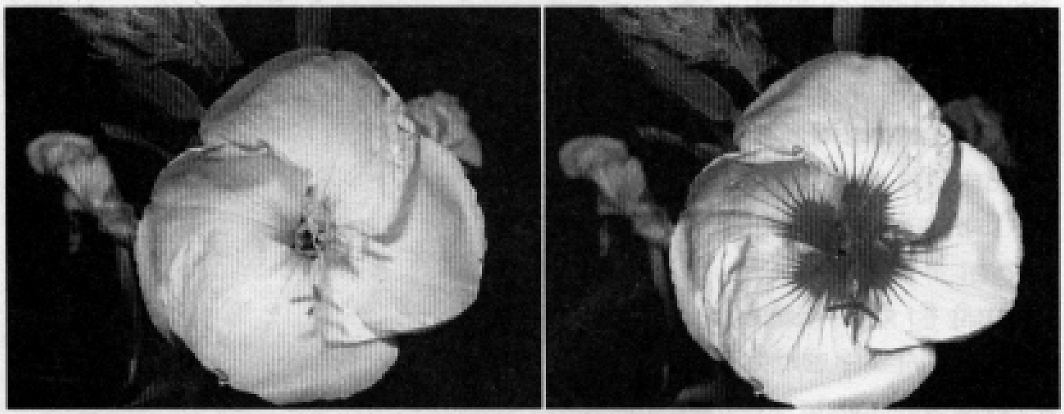

पीला फूल हमें ऐसा दिखता है *वही फूल मधुमक्खियों को ऐसा दिखाई देता है*

हनी गाइड का कार्य करते हैं। देखा गया है कि मधुमक्खियों को नीले और पीले फूल ही ज़्यादा पसन्द आते हैं। चूँकि इनकी आँखें पराबैंगनी किरणों को भी देख सकती हैं अतः वे सभी फूल जो हमें केवल सफेद दिखाई देते हैं, मधुमक्खियों को फ्लेवोन और फ्लेवनोल के कारण अलग रंग के दिखते हैं। मधुमक्खियाँ लाल रंग के प्रति संवेदी नहीं हैं। फिर भी ये लाल रंग के फूलों पर भी मँडराती देखी गई हैं। ऐसा इन फूलों के केन्द्र में पराबैंगनी किरणों को सोखने वाले फ्लेवोन रंजकों के कारण होता है।

इस तरह मधु ग्रन्थियाँ और मधु दर्शक चिन्ह पौधे के वे खास हिस्से हैं जो पौधे की सुरक्षा से लेकर वंश वृद्धि तक महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। फूलों पर स्थित मधु दर्शक हमें दिखें न दिखें, जिनके लिए बने हैं उन्हें तो नज़र आ ही जाते हैं।

एक फूल, एक रसिया

यह किसी फिल्म का शीर्षक नहीं बल्कि प्रकृति के अनूठेपन की एक ज़ोरदार मिसाल है। शुरुआती पेड़ों पर आज की तरह रंग-बिरंगे, सुन्दर, सुगन्धित, नाज़ुक फूल नहीं हुआ करते थे। इन पर चीड़ और देवदार की तरह हरे और कत्थई रंग के शंकु लगते थे जिन पर सीधे ही बीज लगे होते थे। इन पेड़-पौधों में फल नाम की कोई चीज़ नहीं होती जो बीज को ढँककर रख सके। अतः इन्हें नाम दिया गया *जिम्नोस्पर्म* यानी नग्नबीजी!

विकास के लम्बे दौर में जब पौधों पर फूल लगना शुरू हुए तो इन पौधों और पतंगों, तितलियों व पक्षियों ने एक-दूसरे की शरीर रचना व कार्यिकी को बहुत प्रभावित किया। जीवाश्मों के अध्ययन से पता चलता है कि पृथ्वी पर आज से लगभग 34 करोड़ वर्ष पूर्व ही विभिन्न प्रकार के कीट-पतंगों का विकास हो चुका था। पक्षियों का पदार्पण भी 15 करोड़ वर्ष पूर्व की घटना है। इस लिहाज़ से फूलधारी पौधों का उदय काफी नया है। ऐसा माना जाता है कि इनका विकास करीब 13.5 करोड़ वर्ष पूर्व हुआ था।

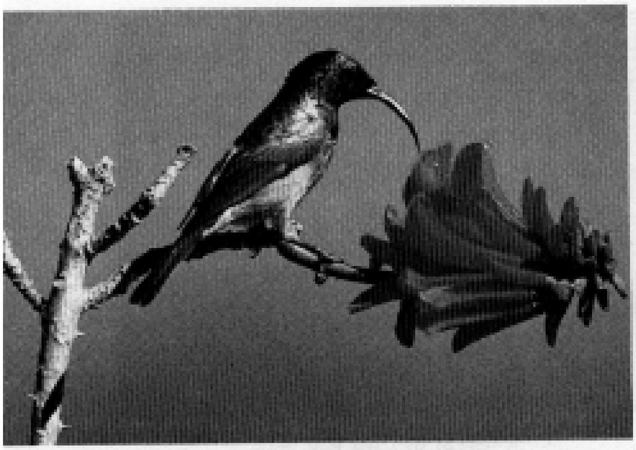

इरीथ्रिना के फूल पर शकरखोरा

अर्थात पृथ्वी पर फूलों की बहार आने के पूर्व ही कीट-पतंगों और पक्षियों की दुनिया बस चुकी थी। और जब पेड़-पौधों पर रंग-बिरंगे और मकरन्द युक्त फूल लगना शुरू हुए तो इन जीवों ने एक-दूसरे के प्राकृतिक चयन को बहुत प्रभावित किया। पौधों की परागण क्रिया पर गौर करने पर यह बात स्पष्ट रूप से पता चलती है।

कई फूलों, तितलियों और पक्षियों का विकास पेड़-पौधों के साथ कदम से कदम मिलाकर हुआ

है। यानी फूल की रचना और परागणकर्त्ता की चोंच या सूँड दोनों में ही बदलाव आए हैं। मसलन जिन फूलों की पंखुड़ियाँ जुड़ी हुई एवं नलीनुमा होती हैं उन पर आने वाले पक्षियों की चोंच भी पतली, लम्बी एवं मुड़ी हुई होती हैं। जैसे अधिकतर शकरखोरों (sunbirds) की चोंच। ऐसी पतली, लम्बी एवं मुड़ी हुई चोंच की मदद से फूलों के अन्दर से आसानी से मधुपान किया जा सकता है और साथ ही परागण भी।

जब एक ही वंश (जीनस) की अलग-अलग प्रजाति में अलग-अलग आकार के फूल लगते हैं तब यह स्पष्ट देखा गया है कि इनके परागणकर्त्ता अपनी चोंच, जीभ या सूँड की लम्बाई के अनुसार उपयुक्त फूलों पर ही जाते हैं। इसका एक सुन्दर उदाहरण है कोलम्बाइन फूल *ऐक्वीलेजिया*। इस वंश की विभिन्न प्रजातियाँ फूलों के छोटे-बड़े आकार के अनुसार चार अलग-अलग प्रजातियों के जीवों से परागित होती हैं। जैसे *एक्वीलेजिया इकेलकराटा* (क) के फूल आकार में छोटे होते हैं और छोटी मधुमक्खियों से परागित होते हैं जबकि थोड़े बड़े *ए. निवेलिस* (ख) के फूल लम्बी जीभ वाली मधुमक्खी से।

थोड़े और बड़े और लम्बी नली वाले फूल *ए. वल्गैरिस* (ग) को इस हेतु लम्बी जीभ वाली बम्बल बी का ही सहारा है जबकि सबसे बड़े और लम्बी नली वाले फूल *ए. फारमोसा* (घ) हमिंगबर्ड की लम्बी पतली चोंच की मदद से ही परागित होते हैं।

इस तरह हम देखते हैं कि फूलों की रचना तो एक जैसी है परन्तु फूल के आकार में परिवर्तन होने से उसके परागणकर्त्ता भी बदल गए हैं। यहाँ मकरन्द नली की लम्बाई और उसके परागणकर्त्ता के रसपान करने वाले अंगों में गज़ब का तालमेल है। जीवों के सहविकास का यह एक ज़ोरदार किस्सा है।

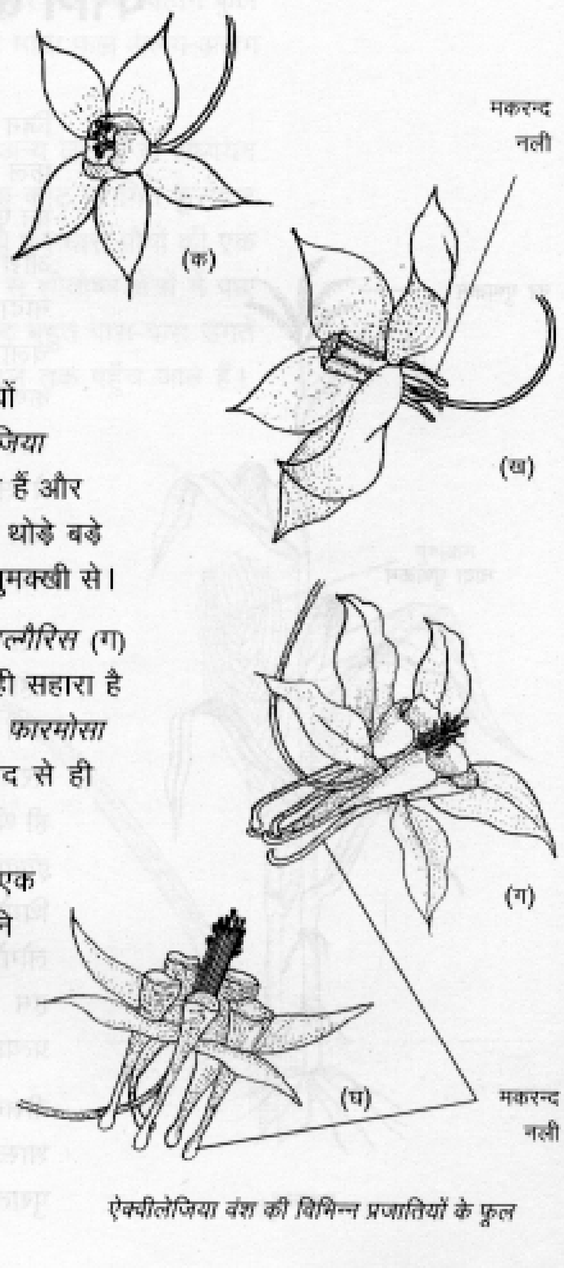

ऐक्वीलेजिया वंश की विभिन्न प्रजातियों के फूल

पराग कणों का हवाई सफरनामा

मक्का

जिन पौधों में फूल खिलते हैं, लगभग उन सभी में फल भी बनते हैं। फूल से फल बनने की इस क्रिया का एक महत्वपूर्ण चरण है परागण की क्रिया। इससे आशय है फूल के नर अंग से पराग कणों का फूल के मादा भाग तक पहुँचना। चूँकि पौधे जन्तुओं की तरह चलायमान नहीं होते, इसलिए उन्हें अपने पराग कणों को उचित जगह तक पहुँचाने के लिए अन्य साधनों का सहारा लेना पड़ता है। शुरुआती दौर में ये साधन पानी व हवा थे। बाद में परिदृश्य बदला और कीट-पतंगे और पक्षी भी इस काम में पौधों की मदद करने लगे।

पराग कणों का यह सफर प्राचीन काल से चला आ रहा है। तरह-तरह के साधनों पर सवार होकर पराग कण अपने गन्तव्य तक पहुँच ही जाते हैं। पौधों में परागण क्रिया की कुछ जानकारी तो प्राचीन काल से ही थी। ईसा पूर्व तीसरी सदी में लिखी अपनी पुस्तक *इंक्वायरी इनटू प्लांट्स* में वनस्पति विज्ञान के पितामह थियोफ्रास्टस (Theophrastus) ने अरबी और सीरियाई लोगों के एक उत्सव का सुन्दर वर्णन किया है। आज हम जानते हैं कि यह उत्सव परागण क्रिया का प्रत्यक्ष एवं सार्वजनिक प्रदर्शन था।

बीसवीं शताब्दी के अन्त तक सभी जाने-माने वनस्पति शास्त्री मानते थे कि हवा द्वारा परागण की युक्ति पुरातन है और अन्य विकसित पौधों का विकास इन्हीं

पौधों से हुआ है। कुछ वैज्ञानिकों ने तो चीड़ या देवदार जैसे शंकुधारी पौधों को फूलदार पौधों का सीधा पूर्वज मान लिया था। चूँकि इन पौधों में भी गन्धहीन, अनाकर्षक, एकलिंगी शंकु बनते हैं, अतः इन पौधों में परागण हवा द्वारा होता है।

रोचक बात यह है कि हवा से परागित होने वाले वर्तमान फूलधारी पौधों में भी छोटे, हल्के रंग के, गन्धहीन, अनाकर्षक और मकरन्द विहीन फूल खिलते हैं। इन पंखुड़ी विहीन फूलों में भी नर व मादा फूल अलग-अलग होते हैं। जैसे खजूर, नारियल, मक्का आदि।

मगर हवा द्वारा परागित इन फूलधारी पौधों के अन्य लक्षणों के अध्ययन से पता चला कि ये शंकुधारी पौधों से नहीं बल्कि कीट परागित फूलदार पौधों से विकसित हुए हैं। हवा द्वारा परागित पौधे फूलधारी पौधों की एक अलग शाखा से विकसित हुए हैं जो मुख्य रूप से शीतोष्ण क्षेत्रों में पाए जाते हैं। यहाँ के जंगलों में एक ही जाति के पेड़ बहुत पास-पास उगते हैं और इनके पराग कण बड़ी आसानी से मंज़िल तक पहुँच जाते हैं।

वायु परागित फूल

वायु परागित फूलों की रचना, आकार, रंग-रूप, गन्ध सभी अलग होते हैं। कीट परागित फूलों की तरह न तो ये रंगीन होते हैं, न ही गन्ध युक्त। और तो और, इनमें मकरन्द भी नहीं बनता। आपने घास, गेहूँ, मक्का वगैरह के फूल देखे होंगे। ये इतने अनाकर्षक होते हैं कि इन्हें फूल कहने तक में संकोच होता है। इन फूलों के पराग कोश फूल से बाहर निकलकर लटकते रहते हैं। इनमें से पराग कण आसानी से हवा द्वारा दूर-दूर तक उड़ सकते हैं। इनमें पराग कण बनते भी ढेरों में हैं। ये सूखे, चिकने, छोटे व हल्के-फुल्के होते हैं। कीट परागित फूलों की तरह ये आपस में चिपकते भी नहीं।

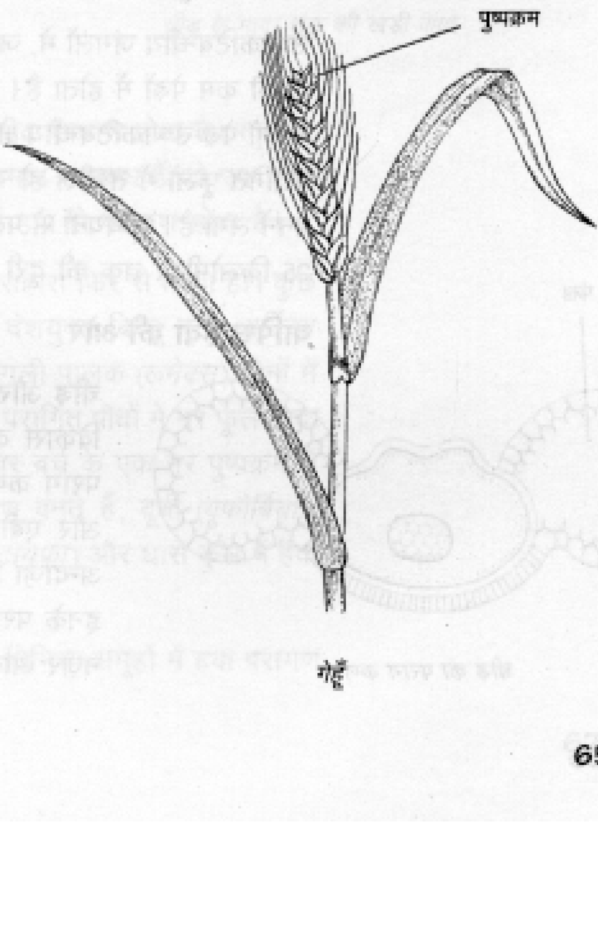

गेहूँ

परागण के लिए हवा के भरोसे रहने के खतरे भी हैं। एक गणितीय अध्ययन से पता चला है कि यदि दो फूलों के बीच की दूरी 2.5 किलोमीटर हो, तो उनमें बनने वाले 1440 पराग कणों में से केवल एक ही स्त्रीकेसर तक पहुँचता है। अतः ऐसे में इन पौधों को लाखों करोड़ों की संख्या में पराग कण बनाने पड़ते हैं।

मक्का एक हवा परागित पौधा है। इसके एक पराग कोश में लगभग 2500 पराग कण बनते हैं और इसके एक छोटे पुष्पक्रम में 15,000 और पूरे पौधे के पुष्पक्रम (टसल) में लगभग 2-5 करोड़ पराग कण बनते हैं। मक्का के प्रत्येक मादा पुष्पक्रम (भुट्टे) पर लगभग 300 से 1000 तक दाने बनते हैं। यानी एक-एक अण्डाशय (भावी दाना) के लिए 20-30 हज़ार पराग कण होते हैं।

वायु परागित फूलों के मादा भाग भी हवा में लटके रहते हैं। ये काफी शाखित और पंखनुमा होते हैं ताकि हवा में इधर-उधर उड़ते पराग कणों को अपने में उलझा सकें। ऐसे अधिकांश पौधों के प्रत्येक फूल में एक ही बीजाण्ड होता है क्योंकि प्रत्येक अण्डाशय से बीज बनने के लिए एक-एक पराग कण लगता है। यही कारण है कि हवा परागित गेहूँ, चावल के प्रत्येक फूल में एक ही दाना बनता है।

उष्णकटिबन्धीय जंगलों में, जहाँ पेड़ काफी दूर-दूर होते हैं, वायु परागण काफी कम पेड़ों में होता है। यह देखने में आया है कि शीतोष्ण जंगलों के जो पेड़ उष्णकटिबन्धीय क्षेत्रों में घुसपैठ कर चुके हैं उनके फूल कीट परागित फूलों में तब्दील हो गए हैं। यानी इनमें गन्ध, रस और मकरन्द बनने लगा है। अध्ययनों से पता चलता है कि कीट-पतंगे पराग कणों को 25 किलोमीटर तक की दूरी तक ले जाते हैं।

वापिस हवा की ओर

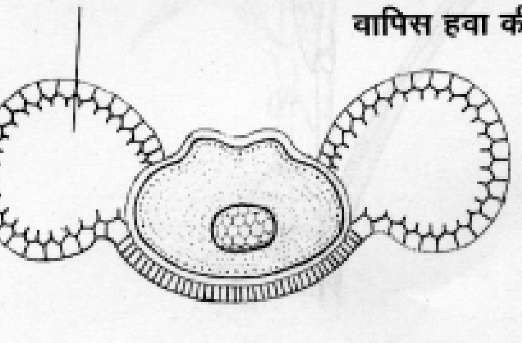

चीड़ का पराग कण

चीड़ और देवदार जैसे पेड़ों में परागण का तरीका विकास की दृष्टि से पुराना माना जाता है। इनके पराग कण हल्के और पंखदार होते हैं। जैसे चीड़ और एबीस में। इनमें पराग कणों की संख्या का अन्दाज़ा इस बात से लगाया जा सकता है कि जब इनके पराग कोश फटते हैं तब हवा में पीला गुबार नज़र आता है। पेड़ को ज़रा-सा हिलाने पर पीले

पराग कणों की बारिश-सी होने लगती है। इसे सल्फर शावर (गन्धक का फव्वारा) कहते हैं। जिन समुद्र तटों पर चीड़ व देवदार के पेड़ मिलते हैं वहाँ किनारों का पानी भी सतह पर तैरते पराग कणों के कारण पीला नज़र आता है।

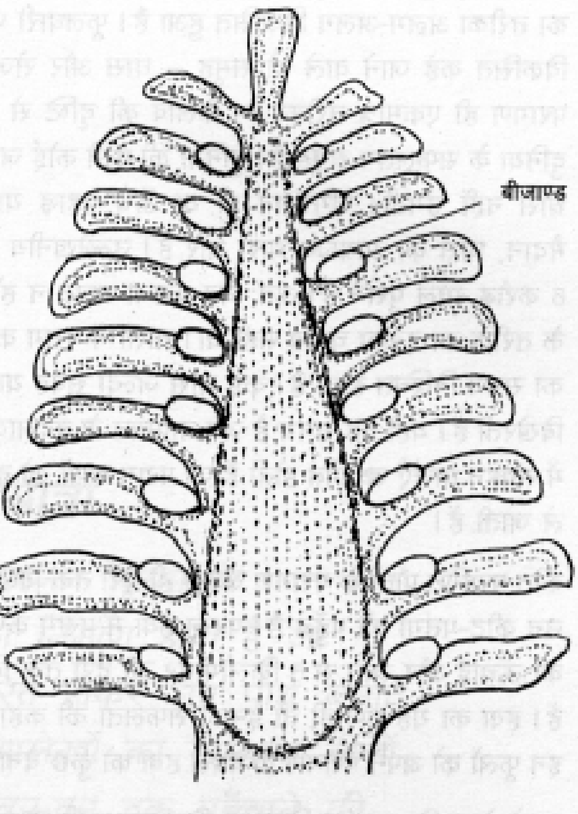

चीड़ के मादा शंकु की खड़ी काट

यह तो ठीक है कि इन शंकुधारी पेड़ों ने हवा का सहारा लिया क्योंकि इनमें सुन्दर, सुगन्धित फूल नहीं होते। परन्तु सुन्दर, सुगन्धित, रसभरे फूलों वाले पौधे, जिन्होंने विकास की लम्बी राह में हवा का साथ छोड़कर कीट-पतंगों और पक्षियों को अपना परागण साथी चुना था, वे क्यों फिर से हवा के भरोसे हो लिए? जैसे, वीर (विलो) के पौधे में परागण मुख्यतः हवा द्वारा ही होता है परन्तु इसके फूलों में आज भी मकरन्द ग्रन्थि मौजूद है। इसी प्रकार से मन्ना ऐश (*फ्रेक्सीनस आर्नेटस*) के फूल सामान्य ऐश के विपरीत आज भी पंखुड़ीयुक्त हैं। इनमें अपने खानदान की पारम्परिक गन्ध भी है और कीट परागण होता है। सामान्य ऐश के फूलों में आज भी वे सभी साज़ो-सामान उपलब्ध हैं जो एक कीट परागित फूल में होते हैं। परन्तु अब इसमें हवा से परागण होता है।

ऐसा नहीं है कि केवल पेड़ों ने ही हवा का सहारा फिर से लिया हो। कुछ शाकीय पौधों ने भी यही रास्ता चुना है। दंशयुक्त बिच्छू बूटी (*आर्टिका डायोका*) और इसके प्राकृतिक उपचार जंगली पालक (*रूमेक्स*) दोनों में ही हवा से परागण होता है। इन सभी वायु परागित पौधों में नर फूल मादा फूलों की तुलना में ज़्यादा बनते हैं। सिल्वर बर्च के एक नर पुष्पक्रम में लगभग एक अरब तीस करोड़ पराग कण बनते हैं, दूधी (*यूफोर्बिया*), सूरजमुखी कुल के कई पौधों, कैट टेल्स (*टायफा*) और घास कुल में हवा से ही परागण होता है।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विभिन्न समूहों में हवा परागण

का तरीका अलग-अलग विकसित हुआ है। फूलधारी पौधों के बड़े एवं विकसित कहे जाने वाले दो समूह – घास और सेज – में तो वायु परागण ही एकमात्र तरीका है। फैलाव की दृष्टि से घास और सेज दुनिया के सफलतम समूह हैं। दुनिया की ऐसी कोई जगह नहीं है जहाँ घास नहीं उगती। रेगिस्तान हो या ऊँचे पहाड़ या फिर बड़े-बड़े मैदान, घास का साम्राज्य चारों ओर है। उल्लेखनीय है कि ये केवल 6 करोड़ साल पुराने हैं। अतः यह कहना गलत न होगा कि परागण के तरीके का इनका चुनाव सही था। घासों में पराग कणों के निकलने का समय निश्चित होता है। कई घास जल्दी सुबह या शाम को पराग बिखेरती हैं। यही वह समय है जब तापमान के बदलाव के कारण हवा में संवहन धाराएँ स्थापित होती हैं जो पराग कणों को दूर-दूर तक उड़ा ले जाती हैं।

कीट परागित पौधों के परागण उतनी ही दूरी तक बिखरते हैं जहाँ तक उन कीट-पतंगों की पहुँच है। परन्तु हवा में पराग कण 2 किलोमीटर की ऊँचाई और स्रोत से 5 किलोमीटर की दूरी तक बिखरते देखे गए हैं। हवा का यह गुण ही तो इनकी सफलता की कहानी है। और हाँ, इन फूलों को अपने परागण के बदले हवा को कुछ देना भी नहीं पड़ता।

हमने देखा कि परागण क्रिया के लिए शुरुआती पौधों को हवा का ही सहारा था। फिर कीट, पक्षियों वगैरह की मदद ली गई और कालान्तर में इस क्रिया के लिए फिर से हवा को चुना गया। तो कैसा लगा पराग कणों का यह सफर – हवा से हवा तक?

खण्ड 4: बीज यात्रा

फूलधारी पौधों में प्रजनन क्रिया के फलस्वरूप बीजों का निर्माण होता है जो आगे चलकर अंकुरित होकर नए पौधे बनाते हैं। इस खण्ड के आलेखों का सम्बन्ध बीजों से और बीजों को दूर-दूर तक पहुँचाने की व्यवस्थाओं से है। नारियल के बीज पर अलग से चर्चा है और बीज रहित फलों की बातचीत के साथ तीन आलेखों का यह खण्ड पूरा होता है।

विस्फोटक वनस्पतियाँ

वनस्पतियों के दूर-दूर तक फैलने के लिए ज़रूरी है कि फल और बीजों का उचित बिखराव हो। पौधों को अपने बीजों के अलावा, प्रजनन के लिए अपने पराग कणों को भी बिखराना होता है, ताकि बीज बनें। पराग कणों, बीजाणुओं के समान बीजों को बिखराने का काम हवा, पानी, कीट-पतंगों, पक्षियों के अलावा कुछ बड़े जन्तुओं द्वारा भी किया जाता है। इनमें इन्सान भी शामिल हैं।

सेमल व अकाव के रेशमी रोमयुक्त बीजों को हवा में इधर-उधर उड़ते तो सभी ने देखा होगा। इसके अलावा भी पौधों के पास अपने बीजों को बिखराने के लिए तरह-तरह की युक्तियाँ हैं। कुछ तो बेहद हैरतअंगेज़ हैं। गज़ब का मशीनरी जुगाड़ है इनके पास – हवा का दबाव, लचीले अंग, लीवर, बन्दूक, गुलेल, पिस्तौल, स्प्रिंग और ढेर सारा हाइड्रोस्टेटिक दाब।

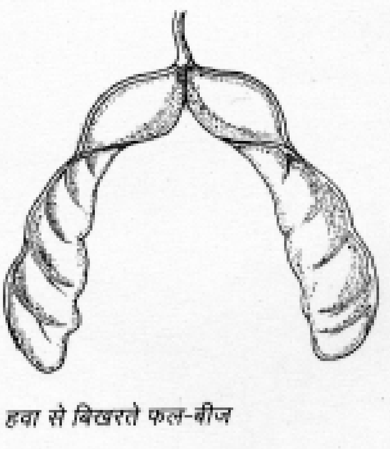

हवा से बिखरते फल-बीज

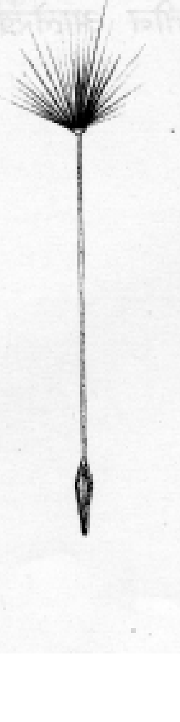

यह तो हम जानते ही हैं कि बीज बनने की प्राथमिक शर्त पराग कणों का एक फूल से दूसरे फूल पर पहुँचना है। अतः यहाँ बात की शुरुआत पराग कणों के फैलाव के कुछ विशिष्ट तरीकों से ही करते हैं।

पायलिया मसकोसा नामक पौधा बगीचों में सुन्दरता के लिए लगाया जाता है। इसका सामान्य नाम है गन पाउडर प्लांट। इसे यह नाम इसके फूलों की एक विशेषता के कारण दिया गया है। माजरा यूँ है कि परिपक्व अवस्था में इसके फूलों के नर भाग (पुंकेसर) को जब भी कोई कीट छूता

है तो लगता है कोई बन्दूक चली है। परन्तु पराग कोशों की इन बन्दूकों से गोलियों की बजाय सुनहरे-पीले पराग का एक गुबार निकलता है जो कीट के शरीर पर चिपक जाता है।

इसी तरह एक अन्य पौधा है *स्टाइलीडियम ग्रेमिनीफोलियम* जिसे बोलचाल में ट्रिगर प्लांट के नाम से जाना जाता है। इसमें गुलाबी फूलों का एक पुष्पक्रम होता है। इसके फूल के नर व मादा भाग एक दूसरे से जुड़े होते हैं। परिपक्व अवस्था में इसके पुंकेसर भरी बन्दूक की तरह होते हैं, जिनका घोड़ा (ट्रिगर) दबाना भर बाकी रहता है। यह कार्य कीटों द्वारा किया जाता है। जैसे ही फूल के नर भाग को कीट का स्पर्श मिलता है ट्रिगर दब जाता है और हज़ारों पराग कणों की बौछार तेज़ी से कीट पर होती है। जब ये कीट उसी जाति के किसी दूसरे फूल पर जाते हैं, तो इनके शरीर पर चिपके पराग कण फूल के वर्तिकाग्र पर लग जाते हैं।

अब आते है बीजों पर। शुरुआत सोयाबीन से करते हैं। किसान जानते हैं कि अगर इसकी फलियों को समय रहते नहीं तोड़ा गया तो वे अपने आप तेज़ी से चट-चट की आवाज़ के साथ फटती हैं और बीज बिखर जाते हैं। ऐसा गोकर्णी (*क्लायटोरिया*) में भी होता है। इसे कुछ लोग अपराजिता के नाम से भी जानते हैं। इसकी फलियों को घर में किसी कोने में लाकर रख दीजिए। सूखने पर जब ये फटेंगी तो चट-चट की आवाज़ दूसरे कमरे तक सुनाई देगी। ऐसे में आपका चौंकना वाजिब है। जंगल की सैर के दौरान भी कभी-कभी ऐसा हो ही जाता है क्योंकि *एन्टाडा गीगस* की एक मीटर लम्बी फलियाँ और केमल्स फुट यानी *बाहुनिया बिलाई* की 30 से.मी. लम्बी फलियाँ भी ज़ोर की आवाज़ के साथ फटती हैं। उल्लेखनीय है कि इसके पत्ते ऊँट के पंजों के समान होते हैं जिनसे पत्तल बनाई जाती हैं।

मालवा व निमाड़ का एक प्रसिद्ध त्यौहार है संझाबाई। इसमें घर के बाहर गोबर से

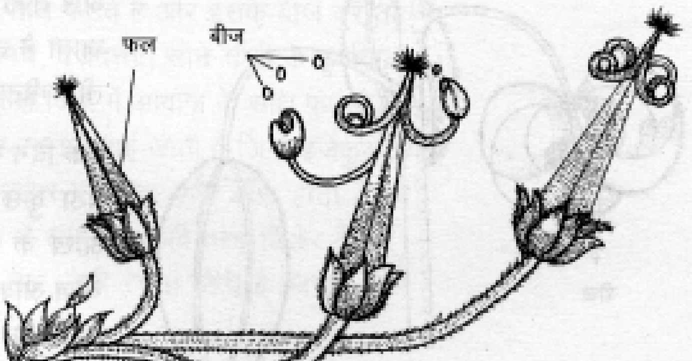

जिरेनियम के बिखरते बीज

ज़मीनी पौधों के कुछ समूह ऐसे भी हैं जिनमें न फूल आते हैं और न ही बीज बनते हैं। जैसे, ब्रायोफाइटें (बारिश में ईंटों व पुरानी इमारतों पर उगती मखमली वनस्पति) व टेरिडोफाइटें (फर्न)। इनमें प्रजनन के परिणाम स्वरूप पौधे के फैलाव के लिए जो रचनाएँ बनती हैं वे बीजाणु कहलाती हैं। ये महीन पाउडर जैसे कण होते हैं, जो अंकुरित होकर नए पौधों को जन्म देते हैं। फ्यूनेरिया, पॉलीट्रायकम और स्फेगनम मॉस ऐसे ही पौधे हैं। स्फेगनम मॉस के बीजाणु उत्पादक कैप्सूल में लाखों की संख्या में बीजाणु भरे होते हैं। पकने पर यह अपने आकार का एक-चौथाई सिकुड़ता है जिससे इसके अन्दर की हवा सिकुड़ती है और उसका दबाव खूब बढ़ जाता है। सिकुड़ने की क्रिया के अन्तिम समय में कैप्सूल पर लगा ढक्कन तेज़ी से उड़ता है और इसमें भरे बीजाणु झटके से एक फीट तक की दूरी पर चारों ओर बिखर जाते हैं। लगभग यही स्थिति फ्यूनेरिया और पॉलीट्रायकम में भी दिखती है। मगर इनमें सारे बीजाणु एक झटके में नहीं बल्कि किश्तों में निकलते हैं जिससे अंकुरण की सम्भावना बढ़ती है।

कलात्मक संझाबाई बनाई जाती है। इसे सजाने का काम गुलतेवड़ी के फूलों की गुलाबी, सफेद और गहरे लाल रंग की नाजुक पंखुड़ियों से किया जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम बड़ा सार्थक है – *इम्पेशेन्स बालसमीना*। इसके फल छुअन के प्रति काफी संवेदी होते हैं। ज़रा से स्पर्श से ही ये फट पड़ते हैं। यानी अपने बीजों को बिखराने के लिए ये काफी अधीर होते हैं। इसका कैप्सूल फल ऊपर से नीचे तक जुड़े पाँच हिस्सों का बना होता है। इसकी फल भित्ति तीन परतों से बनती है। बीच वाली परत लम्बी फैलने वाली कोशिकाओं की बनी होती है जो पकने की स्थिति में एकदम तनी हुई अवस्था में रहती है। पके फलों को हल्का-सा छूने पर तनाव हटता है और इसके पाँचों हिस्से अन्दर की ओर तेज़ी से मुड़ते हैं। नतीजतन फल फट जाता है और इसके बीज चारों ओर दो से तीन मीटर दूर तक फैल जाते हैं।

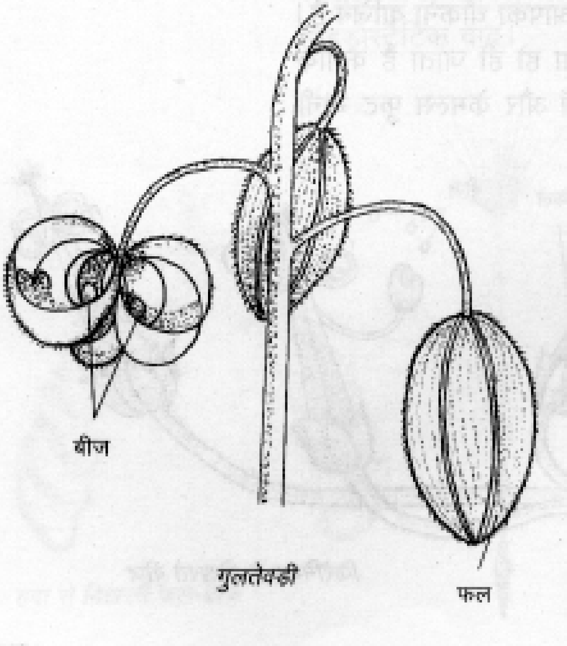

गुलतेवड़ी

एक दिन मैं प्रयोगशाला में खिड़की के पास बैठा कुछ प्रयोग कर रहा था। अचानक आँख के पास तेज़ी से कंकर जैसी कोई चीज़ आकर लगी। ध्यान से देखने पर पता चला कि वह लेंस के आकार का एक छोटा-सा बीज था। खिड़की पार नज़र दौड़ाई कि आखिर ये बीज किसका हो सकता है।

हंसलता में परागण की विचित्र विधि की बात हम पृष्ठ 49-50 पर कर चुके हैं। इसके फल भी बड़े विचित्र होते हैं। बेल के पुराने हिस्सों में यहाँ-वहाँ काली-भूरी5-6 सेंटीमीटर लम्बी सुन्दर-सी डलिया लटकी होती है। प्रत्येक डलिया जिसे (हैंगिंग बास्केट) कहते हैं, छाते की ताड़ियों जैसी रचनाओं से लटकती हैं। इस झूलती डलिया के प्रत्येक खाने में सैकड़ों की संख्या में काले-भूरे, नर्म एवं एकदम हल्के बीज भरे होते हैं।

हवा के हल्के झोंके से डलिया हिलती है तो बीजों की एक खेप दूर-दूर तक बिखर जाती है। हवा के नियंत्रण से रुक-रुककर बीजों के बिखरने का यह तरीका सेंसर मेकेनिज़्म कहलाता है।

हंसलता की बीजों भरी झूलती डलिया

यह तो निश्चित था कि यह बीज किसी विस्फोटक फल वाले पौधे का ही होना चाहिए। वहाँ बेशर्म, गाजरघास, पुवाड़, कुछ घास और अत्रीलाल (पेरिस ट्रॉफी) के पौधे लगे थे। जाँचने पर पता चला कि ये करामात अत्रीलाल की ही थी। यह एकेन्थेसी कुल का सदस्य है। इस कुल में कई ऐसे पौधे हैं जिनकी सूखी फलियाँ ज़रा-सी गीली होने पर इसी तरह तेज़ी से आवाज़ के साथ फटती हैं।

बरसात में सुन्दर नीले रंग के फूलों वाले रूएलिया के कैप्सूल पहली बारिश में चट-चट की आवाज़ के साथ फटते हैं और इसके बीज दूर तक बिखरते जाते हैं। इसी तरह कालमेघ, वज़्रदन्ती, सोने-चाँदी के फूलवाली कण्टाशूली की फलियाँ तेज़ धूप वाले दिनों में आवाज़ के साथ फटती हैं। इस कुल की कई फलियों में विशेष रचनाएँ पाई जाती हैं जिन्हें इजेकुलेटर कहते हैं। प्रत्येक इजेकुलेटर के ऊपर एक-एक बीज रखा होता है जो फल के फटते ही बीज को गोफन में रखे पत्थर की तरह बिखेर देते हैं। इजेकुलेटर हुक की तरह कड़क तार जैसी रचना होती है जिसमें बीज स्प्रिंग की तरह तने रहते हैं।

अमेरिकन कद्दू *सायक्लेन्थेरा एक्सप्लोडेंस* ने बीजों को बिखेरने की एक अलग ही युक्ति अपनाई है। इस फल के दो अर्द्धगोलाकार हिस्से एक मुड़े

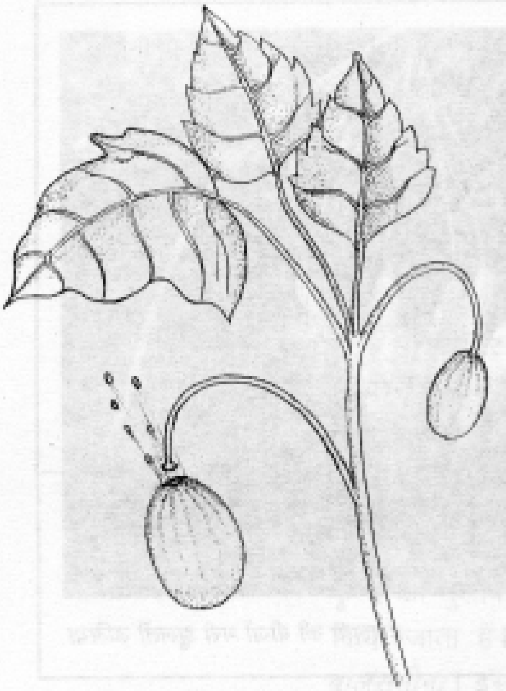

फुहारा खीरा

हुए लीवर की तरह आपस में जुड़े होते हैं। इन दोनों के बीच कार के टायर से दस गुना ज़्यादा हवा का दबाव होता है। फल के पकते ही दोनों अर्द्ध गोले एक-दूसरे से तेज़ी से अलग होते हैं और एक गुलेल की तरह बीज तीन मीटर दूर तक बिखर जाते हैं।

परन्तु सबसे रोचक किस्सा तो फुहारा खीरा (*इकबेलियम*) का है। मध्य एशिया के इस पौधे में छोटे खरबूज़ों के आकार के फल लगते हैं। इसकी सतह छोटे-छोटे रोओं से ढँकी होती है। फल के पकने पर इसके अन्दर का दबाव म्यूकस की अधिकता के कारण बहुत ज़्यादा बढ़ जाता है। परन्तु फल का डण्ठल इसे नियंत्रित किए रखता है। जैसे ही फल पकता है, डण्ठल अलग हो जाता है। इसका छिलका तेज़ी से सिकुड़ता है और सारे बीज रस की एक तेज़ पिचकारी के साथ बाहर फूट पड़ते हैं। फल के अन्दर इतना ज़्यादा हाइड्रोस्टेटिक दबाव बन जाता है कि यह फुहार 6 से 7 मीटर की दूरी तक पहुँचती है।

परजीवी बोन मिसलटो (*आरसीयूथोबियम*) का ज़िक्र न किया जाए, तो विस्फोटक वनस्पतियों की यह बात अधूरी ही रहेगी। इसका फल एकबीजी व गूदेदार होता है जिसकी मध्य भित्ति विसिसिन पदार्थ की बनी होती है। परिपक्व होने पर डण्ठल के आसपास की कोशिकाओं के नष्ट होते ही डण्ठल फल से अलग हो जाता है। इसी बीच विसिसिन परत की कोशिकाएँ भी नष्ट होकर फल के अन्दर इतना हाइड्रोस्टेटिक दबाव बना देती हैं कि बन्दूक की गोली के आकार का चिपचिपा बीज गोली की तेज़ी से निकलकर पार्श्व दिशा में बिखर जाता है। इसकी शुरुआती गति 100 कि.मी. प्रति घण्टा होती है। इस तरह से इसके बीज नए पोषक पेड़ों पर जम जाते हैं और वहाँ अंकुरित होकर नया पौधा बनाते हैं।

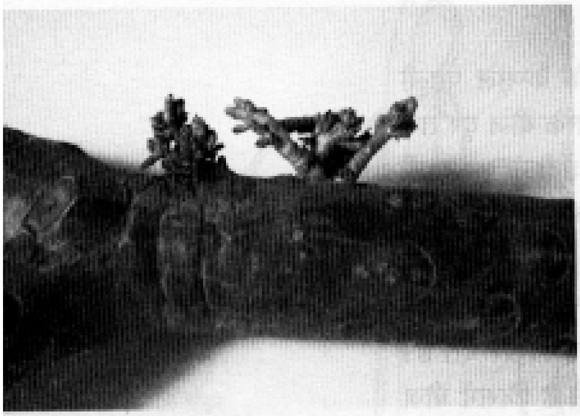

चम्पा पर मिसलटो

बिना बीज के फल

कभी हम चाहते हैं कि फलों में ढेर सारे बीज बनें जैसे चना, मूंगफली, सोयाबीन और मटर, तो कभी हमारी इच्छा होती है फलों में रस ही रस हो, गूदा ही गूदा हो, बीज एक भी न हो...। केले और अंगूर की तरह अमरूद खाते समय भी ऐसा लगता है कि काश ये बीज रहित होते तो कितना अच्छा होता। हमारी ये कल्पनाएँ धीरे-धीरे सच होती जा रही हैं।

बीज रहित फलों के निर्माण की वैज्ञानिक कला यानी पार्थेनोकार्पी (parthenocarpy) एक ऐसा ही प्रयास है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि प्रकृति को मनुष्य की मनमर्ज़ी से चलाने की एक और व्यवस्था। कुछ साल पहले तक पपीता बीज भरा होता था – बीज ज़्यादा, गूदा कम। और बीज भी कड़वे। मुँह में आ जाएँ तो सारा मज़ा किरकिरा। परन्तु आजकल के पपीतों में बीज ढूँढे नहीं मिलते। 20-25 साल पहले अंगूर के भी यही हाल थे। फिर आई अंगूर की बेदाना चमन किस्म। और अब तो लगभग सारे ही अंगूर बेदाना हो गए हैं।

वैसे तो प्रकृति में पहले से ही कुछ प्रजातियाँ बिना बीज की मिलती रही हैं जैसे केला, अनानास, अंगूर आदि। हालाँकि इनकी कुछ किस्मों में आज भी बीज पाए जाते हैं। कभी-कभी प्रकृति में उत्परिवर्तन (mutation) या संकरण के कारण भी बीज रहित किस्में बन जाती हैं।

भुट्टा यानी मक्का के मादा पुष्पक्रम पर लगे सैकड़ों फल

पार्थेनोकार्पी शब्द का सर्वप्रथम उपयोग 1902 में किया गया था। इसका मतलब है बिना निषेचन के फल का निर्माण। वैसे इस सन्दर्भ में वैज्ञानिक निश (Nitsch) का कहना है कि प्रत्येक बीज रहित फल को पार्थेनोकार्पिक मान लेना गलत होगा। हो सकता है कि इन फलों का निषेचन तो हुआ हो परन्तु बीज शुरुआती अवस्था में ही नष्ट हो गए हों। निषेचन का अर्थ है पराग कणों के नर केन्द्रक का अण्डाशय में स्थित बीजाण्ड के मादा केन्द्रक से मिलना।

प्रकृति में बीज रहित यानी पार्थेनोकार्पिक फलों का निर्माण कई कारणों से हो सकता है। खरबूज़ा, केला, अनार और अंगूर में बीज रहित और बीज सहित दोनों किस्में मिलती हैं। ऐसा इनमें आनुवंशिक कारणों से होता है। हो सकता है कि इनमें उत्परिर्वन या संकरण के कारण इन किस्मों का विकास हुआ हो।

पर्यावरणीय कारणों से भी बीज रहित फल बन सकते हैं। पाला, धुन्ध और बहुत कम तापमान के कारण बीजों का विकास रुक जाने से भी फल बीज रहित हो जाते हैं। कैम्पबेल (Campbell) ने देखा था कि पाला पड़ने से जैतून के फलों में बीज नहीं बनते।

ऐसे कई रसायन हैं जिनके उपयोग से बीज रहित फलों का निर्माण सम्भव है। इन रसायनों का अत्यल्प सान्द्रता में फूलों पर छिड़काव करने से बीज रहित फलों का निर्माण किया जा सकता है। बीज रहित फलों के बनने की प्रक्रिया को समझने के लिए कई वैज्ञानिकों ने बड़े रोचक प्रयोग किए हैं। सर्वप्रथम ग्रेटनर ने खीरा के मादा फूलों का एक बिलकुल ही अलग प्रजाति के पौधे *लाइकोपोडियम* के बीजाणु से परागण करवाकर बीज रहित फल प्राप्त किए थे। इसके बाद हांस फिटिंग (Hans Fitting) ने पराग कणों के सत्व को मादा फूलों पर लगाकर बीज रहित फल प्राप्त करने में सफलता हासिल की।

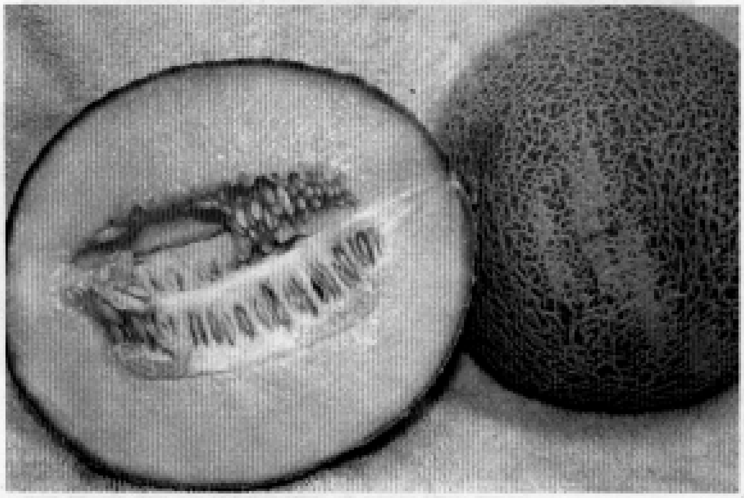

खरबूज़ाः कम होते बीज

फलों के निर्माण में परागण की भूमिका को समझने के लिए यासूदा (Yasuda) ने बैंगन में व्यवस्थित प्रयोग किए। परागण करवाने के बाद अलग-अलग समय पर उनकी वर्तिका काटी गई। जिन बैंगन के फूलों पर अण्डाशय के नीचे तक पराग नली पहुँची थी उनमें फल व बीज दोनों बने। परन्तु जिन फूलों की वर्तिका परागण के कुछ समय बाद ही काट दी गई थी, उनमें केवल फल बने। एक अन्य प्रयोग में उन्होंने परागण न करवाते हुए *पिटूनिया* के पराग कणों का सत्व बैंगन के अण्डाशय में प्रविष्ट कराया तो बीज रहित बैंगन बन गए। इन प्रयोगों से यह स्पष्ट हो गया कि अण्डाशय के फल में परिवर्तित होने के लिए निषेचन ज़रूरी नहीं है। पराग कणों से निकलने वाला कोई रसायन ही पर्याप्त होता है। पराग कणों के सत्व का विश्लेषण करने से पता चला कि इसमें ऑक्सिन जैसे वृद्धि हॉर्मोन पाए जाते हैं।

प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले बीज रहित फलों के विश्लेषण से पता चलता है कि ऐसे फलों में ऑक्सिन की सान्द्रता बीज वाले फलों की तुलना में कहीं ज़्यादा होती है। गस्टाफसन (Gustafson) ने बताया कि ऑक्सिन के एक अन्य प्रकार नैफ्थेलीन एसिटिक अम्ल के छिड़काव से स्ट्रॉबेरी में बीज रहित फल बनाए जा सकते हैं।

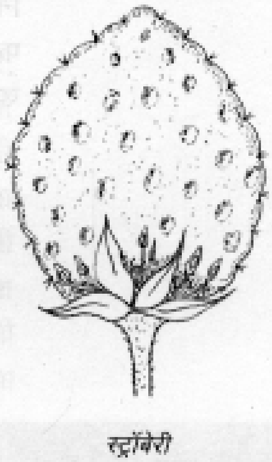

स्ट्रॉबेरी

हालाँकि हॉर्मोन की मदद से बीज रहित फलों का निर्माण पिछले 30-40 वर्षों की ही बात है, परन्तु आजकल इस तकनीक का इस्तेमाल व्यापारिक स्तर पर बड़े पैमाने पर होने लगा है। अमरीका में कई स्थानों पर टमाटर को सर्दियों में ग्रीनहाउस में उगाया जाता है। ऐसे में छोटे दिन होने से रोशनी की कमी व कम तापमान के कारण पराग कणों का निर्माण कम होता है और पराग नली की लम्बाई भी पर्याप्त रूप से नहीं बढ़ती। नतीजतन कई फूल बिना फल में परिवर्तित हुए खिर जाते हैं। कुछ फल बनते भी हैं तो वे छोटे व कम गूदे वाले होते हैं। इन परिस्थितियों में हॉर्मोन के उपयोग से बिना बीज के बड़े व ज़्यादा गूदेदार फल प्राप्त किए जा रहे हैं।

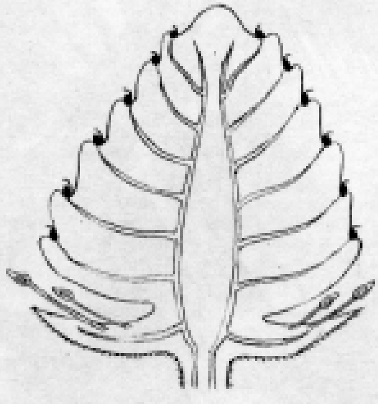

स्ट्रॉबेरी की काट

हमारे यहाँ भी बालसुब्रमण्यन और रंगास्वामी ने कृत्रिम परागण और ऑक्सिन, IBA और 2,4-D हॉरमोनल जैसे

शाकनाशियों के प्रयोग से अमरूद, अंजीर, सन्तरा, नारंगी, टमाटर व ककड़ी में बीज रहित बड़े-बड़े फलों का उत्पादन किया है। उद्यानिकी के क्षेत्र में बीज रहित फलों के उत्पादन की बहुत अच्छी सम्भावनाएँ हैं। जैसे जैम, जेली, सॉस व फलों के रस का निर्माण करने वाली इकाइयों में ऐसे फलों की बड़ी माँग रहती है। बीज न बनने से फलों में खाने योग्य भाग यानी गूदा व रस ज़्यादा मिलता है। बीज रहित फलों के उत्पादन की तकनीक में अभी कई खामियाँ भी हैं। मसलन, सबसे बढ़िया हॉरमोन का चयन, उचित समय का चुनाव आदि। यह भी देखा गया है कि पत्तियों और तनों पर इन संश्लेषित हॉरमोन के प्रभाव होते हैं। इनसे बचाव की युक्तियाँ अभी खोजी जाना हैं।

कुल मिलाकर बीज रहित फल प्राप्त करने के लिए हम कृत्रिम परिस्थितियाँ निर्मित कर अण्डाशय को निषेचन का छद्‌म सन्देश पहुँचाकर अनिषेचित फल प्राप्त कर रहे हैं। ये सब मानव द्वारा स्वहित में प्रयुक्त तकनीकों के उदाहरण हैं।

नारियल का बीज

पानी के समीप रहने वाले पौधों के फलों व बीजों का बिखराव पानी के द्वारा होता है। जैसे नारियल, कमल, केवड़ा वगैरह। नारियल के पके फल टूटकर समुद्र में गिर जाते हैं और लहरों के साथ दूर-दूर के टापुओं पर पहुँच जाते हैं।

नारियल एक प्रकार का ड्रूप फल है। इसके अन्य उदाहरण हैं – बेर, आम, अखरोट, बादाम आदि। अमूमन इन फलों का छिलका तीन परतों से बना होता है। बाहरी, मध्य और आन्तरिक। ड्रूप फलों का बाहरी छिलका चमड़े जैसा, मध्य छिलका रसदार और अन्दर वाला कठोर होता है। नारियल एक रेशेदार फल है। इसमें छिलके की बाहरी परत चिकनी और मोटी होती है। इस कारण समुद्र का खारा पानी फल के अन्दर प्रवेश नहीं कर पाता। शुरुआत में यह परत हरी होती है जब आप नारियल पानी पीते हैं। मगर बाद में सूखकर भूरी हो जाती है। मध्य रेशेदार परत में हवा भरी होती है जिससे यह पानी पर तैरता रहता है। छिलके के अन्दर वाली परत पत्थर के समान कठोर होती है। यह भ्रूण की रक्षा करती है। इसी वजह से इन फलों को स्टोन फ्रूट भी कहते हैं। ड्रूप प्रायः एक बीज वाले फल होते हैं। बीज में एक भ्रूण होता है जो आगे चलकर अंकुरित होकर नए पौधे का निर्माण करता है। भ्रूण के विकास के दौरान इसे भोजन की आवश्यकता होती है। बीज में इसकी व्यवस्था भी होती है। कुछ बीजों में भ्रूण के लिए भोजन बीजपत्रों में जमा रहता है जबकि कुछ बीजों में यह भोजन भ्रूणपोष नामक विशेष ऊतक में संग्रहित रहता है।

फलों से लदा नारियल

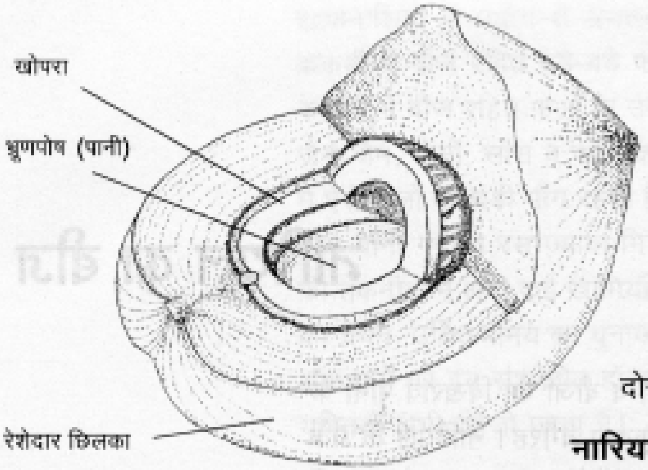

नारियल का त्रिआयामी चित्र

कहाँ है नारियल का बीज

कहते हैं नारियल खाते समय बीज मिल जाए तो बड़े भाग्य की बात होती है। इस बात में सच्चाई हो न हो मगर यह सवाल रोचक है कि नारियल का बीज है कहाँ। बीज की तलाश के लिए यह याद रखना ज़रूरी है कि बीज में भ्रूण और भ्रूण का भोजन दोनों शामिल होते हैं।

नारियल का भ्रूण

नारियल का भ्रूण सफेद गरी में ऊपर की आँख के पास धँसा रहता है। अन्दर वाले छिलके के एक सिरे पर तीन गड्ढे से दिखाई देते हैं जिन्हें आँखें कहते हैं। जब बीज अंकुरित होता है तो नया-नवेला पौधा इन्हीं में से एक गड्ढे में से निकलता है। इसका भ्रूण फल के अन्दर ही अंकुरित हो जाता है। इसका निचला सिरा बढ़कर एक बीजपत्र बनाता है। इसके नीचे वाला भाग फूलकर स्पंजी हो जाता है। भ्रूण के ऊपरी सिरे से एक छोटा तना निकलता है जिसके निचले सिरे से कई तन्तुमय जड़ें निकलती हैं। ये जड़ें फल की मोटी रेशेदार परत को भेदकर बाहर आ जाती हैं।

भ्रूणपोष

कठोर परत यानी एण्डोकार्प के अन्दर बहुत सारा तरल पदार्थ भरा होता है। यह नारियल की लम्बी समुद्री यात्राओं में मीठे पानी का काम करता है और भ्रूण को पोषण भी प्रदान करता है। बीजपत्र की वृद्धि के साथ भ्रूणपोष पतला होने लगता है। धीरे-धीरे इसका पानी चुक जाता है और यह छिलके के अन्दर गरी के रूप में जमा हो जाता है। अर्थात यह गरी नारियल का भ्रूणपोष ही है।

तो नारियल का बीज कहाँ है। हम देख ही चुके हैं कि बीज मतलब भ्रूण, भ्रूणपोष व बीजपत्र को मिलकर बनी रचना है। अब नारियल का भ्रूण तो एक जगह धँसा है और भ्रूणपोष तरल रूप में है। यह सब मिलकर ही बीज कहलाएगा। जिसे आमतौर पर नारियल का बीज कहा जाता है वह तो मात्र उसका भ्रूण है। आप चाहे गरी खाएँ या खोपरा, असल में आप बीज ही खा रहे हैं।

खण्ड 5: बगैर बीज वंशवृद्धि

फूलधारी पौधों में सामान्य प्रजनन कार्य तो बीजों के माध्यम से पूरा होता है। मगर इनमें प्रजनन के लिए बीजों के अलावा अन्य रास्ते भी अपनाए जाते हैं। फिर कई सारी ऐसी वनस्पतियाँ हैं जो अपने ही तरीके से सन्तानोत्पत्ति करती हैं। कुछ बातें इनके बारे में भी हो जाएँ।

बिना बीज के उगते पौधे

दुनिया में लगभग 5 लाख प्रकार के पौधे पाए जाते हैं, जिन्हें मोटे तौर पर बीजधारी और बीजाणुधारी पौधों में बाँटा गया है। बीज धारण करने वाले पौधों में आम, इमली, खजूर, जामुन के साथ चीड़, देवदार, विद्या और सायकस जैसे पौधे शामिल हैं। परन्तु चीड़, देवदार, विद्या और सायकस जैसे पौधों में फल नहीं बनते। जिन पौधों में फूल लगते हैं और फल बनते हैं उन्हें हम पुष्पीय पौधे (angiosperm) कहते हैं। दरअसल जिन पौधों में फल बनते हैं, फूल भी उनमें ही खिलते हैं।

फूल से फल और फलों में बीज बनना एक सामान्य प्रक्रिया है। यह प्रक्रिया पौधे में लैंगिक जनन के लिए सम्पन्न होती है। जिस तरह उच्च श्रेणी के जन्तुओं (जैसे स्तनधारियों) में लैंगिक जनन के फलस्वरूप बच्चे पैदा होते हैं, ठीक उसी प्रकार उच्च श्रेणी के पौधों में भी लैंगिक जनन के दौरान फूल खिलते हैं और फल में बीज बनते हैं, जो एक मायने में गर्भस्थ शिशु जैसे हैं।

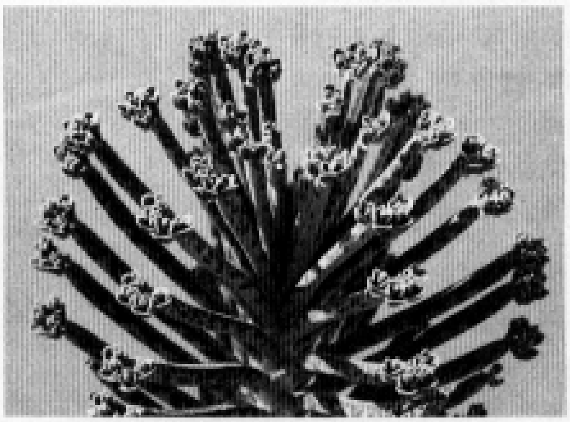

केलेन्चू ट्युबेफ्लोरा

जन्तुओं के बच्चों की तुलना में ये जागे हुए नहीं सोए हुए बच्चे हैं, जो पर्याप्त हवा, पानी और धूप मिलने पर ही जागते हैं और धीरे-धीरे एक वयस्क पौधे में बदल जाते हैं।

लैंगिक जनन के अलावा पेड़-पौधों में एक और तरीके से जनन होता है जिसमें पौधे बिना फूल के प्रजनन करते हैं। पौधे की काया से होने वाला यह प्रजनन कायिक जनन या वर्धी प्रजनन (vegetative propagation) कहलाता है। यह उन पौधों

में भी होता है जिनमें सामान्य रूप से फूल खिलते हैं और फल-बीज बनते हैं। जैसे अपना जाना-पहचाना आम जिसकी कलम लगाते हैं। ऐसे पौधे जिनमें कायिक जनन ज़्यादा प्रभावी होता है वे अक्सर मांसल होते हैं।

वर्धी प्रजनन में पौधे के शरीर के किसी भी भाग से नए पौधे बन सकते हैं। जैसे जड़ से, तने से और यहाँ तक कि पत्तियों से भी नए पौधे बनते हैं। है ना मज़ेदार बात – पत्तियों से पौधे? ऐसा होता है *मदर ऑफ मिलियन्स* नाम के पौधे में। परन्तु उसकी बात बाद में। पहले हम जड़ से पैदा होने वाले नए पौधों की बात करते हैं।

जड़ से पौधे

जड़ से नए पौधे बनने का आम उदाहरण है शकरकन्द अर्थात रतालू। रतालू की जड़ पर वर्धी कलिकाएँ होती हैं जिनसे नए पौधे बनते हैं। ठीक ऐसा ही सतावर यानी *एस्पेरेगस* और सुन्दर बड़े-बड़े फूलों के मालिक डेहलिया में प्राकृतिक रूप से होता है।

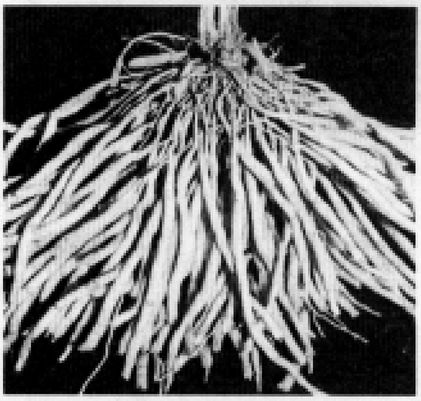

ऐस्पेरेगस की जड़ें

तने से पौधे

तने से नए पौधे बनना भी बहुत आम है। हमारे चिर परिचित आलू में प्रजनन तने से ही होता है। दरअसल आलू एक रूपान्तरित तना है जिस पर कई आँखें होती हैं। ये आँखें ही नए पौधे की परिचायक हैं। यहाँ पर वर्धी कलिकाएँ होती हैं, जो बीज की तरह अंकुरित होकर नए पौधों को जन्म देती हैं। आलू की खेती में आलू ही 'बीज' की भाँति प्रयुक्त होता है। आलू से नए पौधे प्राप्त करने के लिए उसके तीन-चार टुकड़े कर लिए जाते हैं और इन्हें ज़मीन में बीज की तरह बो दिया जाता है। प्रत्येक टुकड़े में आँख होनी चाहिए। ऐसा आलू बीजू कहलाता है। एक आलू से बने सभी पौधे उस आलू के क्लोन कहलाते हैं।

इसी तरह गन्ना, केला, अदरक और हल्दी में भी तने से ही नए पौधे बनते हैं। तनों पर उपस्थित कलिकाओं से नए पौधे बनना पुनरुत्पादन (regeneration) कहलाता है।

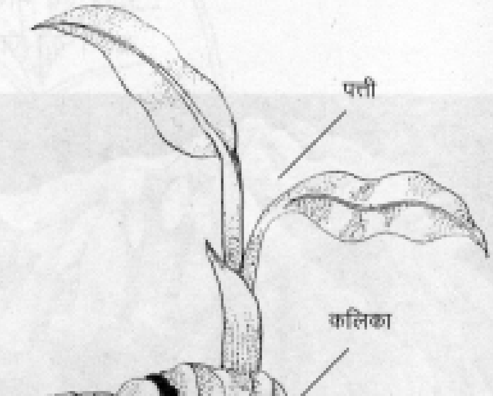

अदरक

पत्ती से पौधे

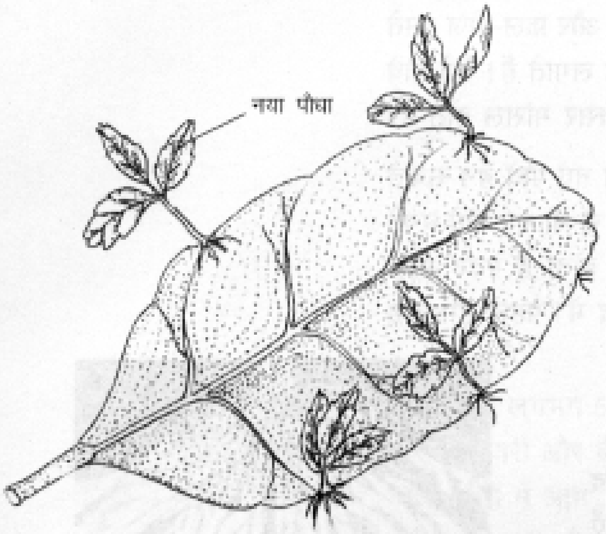

पत्थरचट्टा की एक जनन पत्ती

ये तो हुई जड़ और तने से नए पौधे बनने की बात। परन्तु पत्तियाँ जिनका मुख्य काम पौधों के लिए भोजन बनाना है, वे भी कभी-कभी नए पौधे बनाती हैं और वह भी एक-दो नहीं ढेर सारे। ऐसी पत्तियों को जनन पत्ती कहते हैं। ऐसा *ब्रायोफिलम* की कई प्रजातियों में देखा गया है। जैसे *ब्रायोफिलम पिन्नेटम, केलेन्चू ट्यूबीफ्लोरा, मेक्सिकनहैट केलेन्चू* आदि। यहाँ हमें वर्धी प्रजनन की कई अवस्थाएँ देखने को मिलती हैं।

ब्रायोफिलम पिन्नेटम की पुरानी पत्तियाँ जब ज़मीन के सम्पर्क में आती हैं, तब इन पत्तियों के खाँचों पर उपस्थित ऊतक सक्रिय होकर नए-नए पौधों को जन्म देते हैं। इस तरह इस पौधे की पत्तियों से कई नए छोटे-छोटे पौधे बन जाते हैं। पुराने पौधों के नीचे ऐसी कई पत्तियाँ मिल जाती हैं जिनसे 'बच्चे' पनप रहे होते हैं।

दूसरा उदाहरण है *केलेन्चू ट्यूबीफ्लोरा*। इसकी पत्तियाँ नली जैसी गोल-गोल एवं मांसल होती हैं। इसमें प्रजनन के लिए पत्तियों को ज़मीन से सटने की ज़रूरत भी नहीं होती। इसकी पत्तियों के किनारों पर कुछ खाँचे बने होते हैं। इन्हीं खाँचों से नई-नई छोटी-छोटी कलियाँ निकलती हैं। इस तरह ज़मीन से दूर हवा में ही इसके बच्चे बनते हैं। प्रत्येक पत्ती से चार-छह कलियाँ बनती हैं। ये कलिकायुक्त पत्तियाँ ऊपर से देखने पर बहुत खूबसूरत लगती हैं।

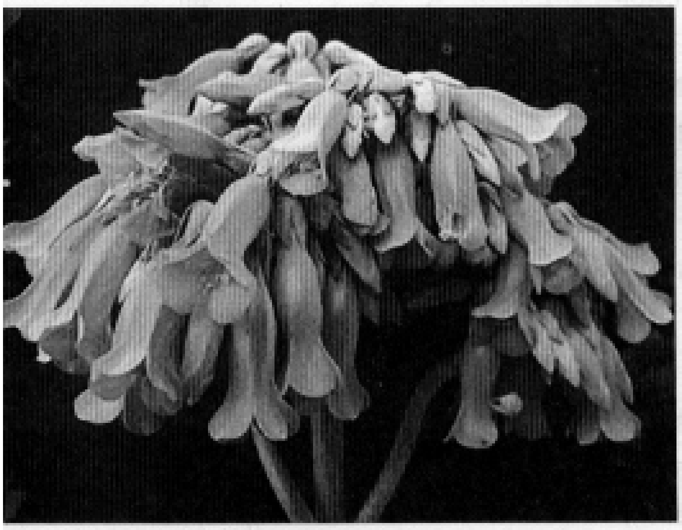

केलेन्चू ट्यूबीफ्लोरा के फूल

ये नन्हे-नन्हे शिशु पौधे ज़मीन पर गिरते ही जड़ें जमाकर नए पौधों में बदल जाते हैं। वर्षा काल में तो पत्तियों पर लगे-लगे ही इन शिशु पौधों पर 2-3 सेंटीमीटर तक लम्बी जड़ें लटकने लगती हैं। इस पर बहुत ही सुन्दर नारंगी रंग के फूल आते हैं और फल आने के बाद पौधा सूख जाता है।

मेक्सिकनहैट प्लांट की बड़ी टोप जैसी पत्तियों के किनारों पर छोटे पौधे तैयार हो जाते हैं। इनमें जड़ें भी निकल आती हैं। ये अपस्थानिक कलिकाएँ हैं जो नए पौधों को जन्म देती हैं।

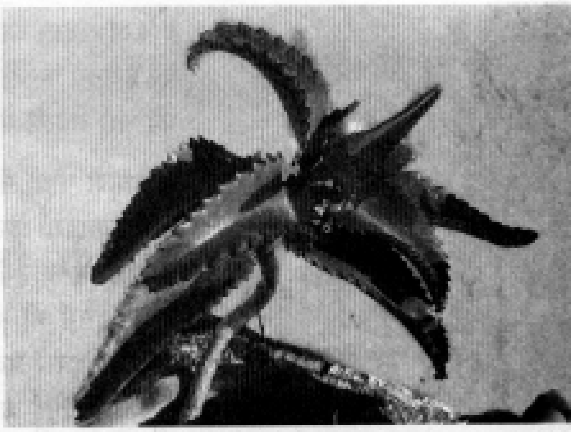

मेक्सिकनहैट कैलेन्चू

तीसरा उदाहरण है सफेद मूसली यानी *क्लोरोफाइटम* वंश के एक पौधे का। इसे बाग-बगीचों में गमलों में लगाकर टोकरों में लटकाया जाता है। इसका सामान्य नाम है स्पाइडर प्लांट। लटकते हुए टोकरों में लगा यह पौधा बिलकुल मकड़ी की तरह लगता है जिसमें कई सारी टाँगें चारों तरफ फैली हुई हैं। दरअसल इसके मुख्य पौधे से बाहर निकलकर लटकने वाली ये टाँगनुमा रचनाएँ इसके पुष्पवृंत हैं जिनके सिरे पर सफेद-से रंग के बड़े सुन्दर फूल खिलते हैं।

फूल खिलने के बाद इनके अक्ष से बलबिलें पनपती हैं। दरअसल पुष्पीय शाखाओं से उत्पन्न होने वाली ये बलबिलें वर्धी प्रजनन का एक तरीका हैं। ये बलबिलें एक छोटे पौधे की तरह होती हैं जिनमें ऊपर की ओर पत्तियाँ व नीचे की ओर जड़, सबकुछ होता है। पौधों को इस अवस्था में देखने पर लगता है कि इस पर छोटे-छोटे पौधे लटके हुए हैं। यह विविपैरी(बच्चे जनने) का एक बढ़िया उदाहरण है।

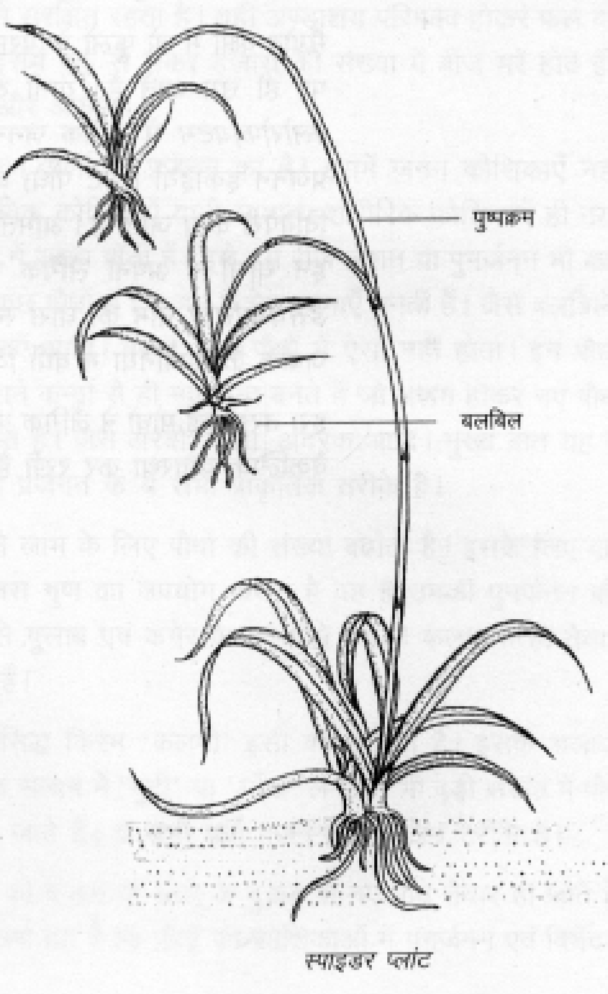

स्पाइडर प्लांट

कैलेन्चू ट्यूबीफ्लोरा में पत्ती के सिरों पर ही 3-4 पर्ण कलिकाएँ बनती हैं। परन्तु *ब्रायोफिलम हेमीग्रेफिका* में तो पत्ती के हर कटाव पर पर्ण-कलिका बनती है। एक ही पत्ती पर 20 से 50 तक शिशु पौधे बनते हैं।

एक और बात ध्यान देने योग्य है। जहाँ *ब्रायोफिलम* में पत्तियाँ पुरानी होने पर प्रजनन करती हैं, वहीं *केलेन्चू ट्यूबीफ्लोरा* और *ब्रायोफिलम हेमीग्रेफिका* की नई नवेली पत्तियों में ही यह क्षमता होती है।

फूलधारी पौधों में वर्धी प्रजनन तीन प्रकार का होता है। पहले प्रकार में वर्धी इकाइयाँ फूल के बाहर पैदा होती हैं। फूल खिलते हैं मगर परागण न होने के कारण बीज नहीं बनते। जैसे रामबाण *(ऐगेव अमेरिकाना)* के पौधे। इनमें भी बलबिल बनती हैं जो नीचे गिरकर नए पौधों को जन्म देती हैं। दूसरे प्रकार में पौधा बीज बनाने में अक्षम होता है। तीसरे प्रकार में वर्धी इकाई यानी प्रोपेग्यूल्स पुष्पीय शाखाओं पर फूलों के साथ ही बनती हैं। जैसे स्पाइडर प्लांट *(क्लोरोफाइटम)*। यह स्थिति विविपैरी कहलाती है परन्तु यह मैंग्रोव पौधों की विविपैरी से अलग होती है।

मैंग्रोव वृक्षों में तो फूलों के परागण की क्रिया के पश्चात् बने बीज पौधे पर ही उग आते हैं। यानी यह लैंगिक प्रजनन ही है। दूसरी ओर *क्लोरोफायटम* में लैंगिक जनन नहीं होता बल्कि फूलों के साथ बनी प्रजनन इकाइयाँ (छोटे पौधे) वर्धी रूप से ही बनते हैं। अतः इसे वर्धी विविपैरी कहा जाता है। आमतौर से ऐसा घासों में पाया जाता है। वैसे इन घासों ने अपनी लैंगिक जनन क्षमता को नहीं खोया है। जैसे *डेसचेम्पासिया* नाम की घास स्वीडन में लैंगिक रूप से जनन करती है जबकि कैलिफोर्निया में वर्धी विविपैरी दर्शाती है।

इस तरह कई पौधों ने लैंगिक प्रजनन के अलावा भी अपनी वंश वृद्धि की वैकल्पिक व्यवस्था कर रखी है।

काँच के बरतनों में पौधों की क्यारियाँ

हमने देखा है कि पौधों में प्रजनन के कई तरीके हैं। एक तरीका लैंगिक प्रजनन का है, जिसमें फूल खिलते हैं और फिर परागण होता है। नर व मादा जनन कोशिकाओं के मिलने से निषेचित अण्डा बनता है जो अण्डाशय में सुरक्षित रहता है। यही अण्डाशय परिपक्व होकर फल बन जाता है। इसमें एक से लेकर हज़ारों की संख्या में बीज भरे होते हैं। जैसे आम और अफीम।

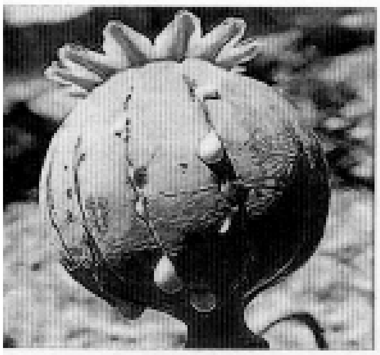

अफीम का डोडा

दूसरा तरीका अलैंगिक प्रजनन का है। इसमें जनन कोशिकाएँ नहीं बनतीं। कायिक कोशिकाएँ यानी सामान्य शारीरिक कोशिकाएँ ही नया पौधा बनाने में सक्षम होती हैं। इसे हम रीजनरेशन या पुनर्जनन भी कह सकते हैं। कुछ पौधों में इस हेतु विशेष रचनाएँ बनती हैं। जैसे बलबिलें, पर्ण कलिकाएँ आदि। परन्तु अन्य पौधों में ऐसा नहीं होता। इन पौधों में इनके पुराने कन्दों से ही नए कन्द बनते हैं जो अलग होकर नए पौधों को जन्म देते हैं। जैसे अरबी, केला, अदरक आदि। मुख्य बात यह है कि पौधों में प्रजनन के ये सभी प्राकृतिक तरीके हैं।

मनुष्य अपने लाभ के लिए पौधों की संख्या बढ़ाता है। इसके लिए वह पौधों के जिस गुण का उपयोग करता है वह है उनकी पुनर्जनन की क्षमता। जैसे गुलाब एवं कनेर के नए पौधे उनकी कलम से ही तैयार किए जाते हैं।

आम की प्रसिद्ध किस्म 'कलमी' इसी का नतीजा है। इसके अलावा कई पौधों के सन्दर्भ में 'गूटी' या 'आँख' लगाकर भी बड़ी संख्या में पौधे तैयार किए जाते हैं। ये सभी वर्धी प्रजनन के कृत्रिम तरीके हैं।

जब गुलाब की कलम या आलू के टुकड़े से नए पौधे तैयार हो जाते हैं तो इसका अर्थ यह है कि पौधों की कोशिकाओं में पुनर्जनन एवं विभेदन

की क्षमता है। यह सच है कि पौधों में यह क्षमता जन्तुओं की तुलना में ज़्यादा है। सरल प्रकार के जन्तुओं जैसे हाइड्रा और केंचुए में भी ऐसा होता है। परन्तु विकसित जन्तुओं में यह क्षमता उत्तरोत्तर कम होती गई है। अलबत्ता, पौधों में यह आज भी उच्च श्रेणी तक विद्यमान है। फूलधारी पौधों में यह आम बात है।

हेबरलैण्ड

जब पौधे की किसी टहनी, कन्द के एक छोटे-से टुकड़े या रतालू में जड़ से हूबहू वैसे ही पौधे तैयार हो जाते हैं तो फिर उनकी कुछ कोशिकाओं से यह क्यों नहीं हो सकता? यही सोचकर 1902 में एक जर्मन वनस्पति शास्त्री हेबरलैण्ड (Haberlandt) ने कहा कि पौधे की प्रत्येक कोशिका में एक नया पौधा बनाने की क्षमता है। इस क्षमता को टोटीपोटेन्सी या पूर्ण-सक्षमता कहा गया है। इसका मतलब है कि पौधे की प्रत्येक कोशिका में उसके जैसा ही नया पौधा बनाने की क्षमता होती है। इसके पीछे यह सिद्धान्त है कि चूँकि पौधे की प्रत्येक कोशिका एक ही निषेचित अण्डे से बनती है अतः इसकी सभी कोशिकाओं में एक पूरा नया पौधा बनाने की क्षमता होनी चाहिए। हेबरलैण्ड ने पत्तियों की कोशिकाओं को प्रयोगशाला में कृत्रिम पोषक माध्यम में उगाकर इनसे पौधा बनाने की कोशिश भी की परन्तु वे सफल नहीं हो पाए।

ऊतक संवर्धन का यह प्रथम वैज्ञानिक प्रयास था। इसकी परिणति टिश्यू कल्चर यानी ऊतक संवर्धन के नाम से हुई, जो क्लोनिंग पर जाकर समाप्त होती है।

टिश्यू कल्चर और अंग संवर्धन जन्तुओं में आज भी कठिन है परन्तु वनस्पतियों में यह बड़ी आसानी से सम्भव होता है। इसमें पौधे के किसी भी अंग की कोशिकाएँ लेकर उन्हें प्रयोगशाला में काँच के बरतन में पोषक पदार्थों से युक्त माध्यम में रोपा जाता है।

वैसे इसी से मिलता-जुलता कार्य किसान सदियों से अपने खेतों में गन्ने या आलू के टुकड़े मिट्टी में रोपकर कर रहे हैं। परन्तु प्रयोगशाला में यह काम अंगों को नहीं उनकी कुछ कोशिकाओं को लेकर कृत्रिम परिस्थितियों में किया जाता है।

हेबरलैण्ड के बाद 1904 में हेनिंग (Hanning) ने सरसों कुल के पौधों के भ्रूणों को उगाने का प्रयास किया। 1922 में रॉबिन्स एवं कोटे (Robbins & Kotte) को जड़ों को उगाने में कुछ सफलता हाथ लगी। सन् 1932 में व्हाइट (White) ने टमाटर की जड़ों को सफलतापूर्वक उगाया। 1939 में गोथरेट, नोबेकोर्ट और व्हाइट (Gautheret, Novecourt & White) को कैलस कल्चर में सफलता हासिल हुई। कैलस अर्थात् अविभेदित कोशिकाओं का समूह।

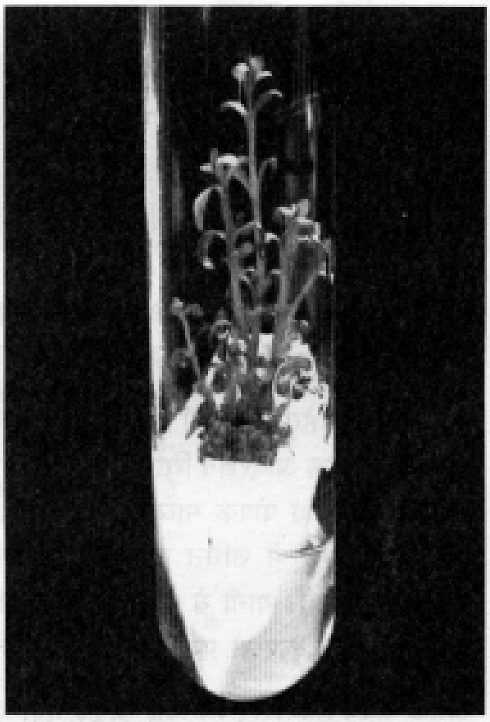

परखनली में उगते पौधे

स्कूग और मिलर (Skoog and Miller) ने 1957 में इस तकनीक को आगे बढ़ाया। उन्होंने पोषक माध्यम में ऑक्सिन और साइटोकाइनिन को विभिन्न अनुपातों में मिलाकर कैलस कल्चर किया। उन्होंने बताया कि जब पोषक माध्यम में ऑक्सिन ज़्यादा और साइटोकाइनिन कम हो तो कैलस की अविभेदित कोशिकाएँ जड़ों की कोशिकाओं में विकसित होने लगती हैं। इसका उल्टा यानी ऑक्सिन कम और साइटोकाइनिन ज़्यादा होने पर कैलस की कोशिकाएँ तने की कोशिकाओं में बदलने लगती हैं। यह एक महत्वपूर्ण खोज थी जिसने कोशिकाओं के विभेदन में हॉरमोन की भूमिका पर स्पष्ट जानकारी उपलब्ध कराई। ऑक्सिन व साइटोकाइनिन पौधों में पाए जाने वाले हॉरमोन हैं।

किसी पौधे की कुछ ही कोशिकाओं के संवर्धन से पूरा पौधा तैयार करने का श्रेय स्टीवर्ड (F.C. Steward) को जाता है। उन्होंने 1964 में गाजर की जड़ों के फ्लोएम की कोशिकाओं को कल्चर कर उनसे गाजर का पूरा पौधा तैयार किया था। उन्होंने यह भी दर्शाया कि परिपक्व कोशिकाओं से भी नया पौधा बनाया जा सकता है। सर्व-सक्षमता का यह पहला स्पष्ट प्रमाण था।

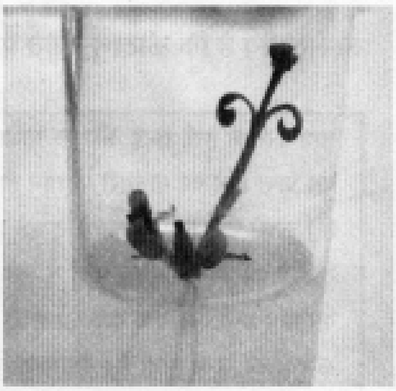

ब्राह्मी का एक जड़ सहित पौधा

इसके बाद भारतीय वैज्ञानिक जोड़ी अनिता गुहा एवं पंचानन माहेश्वरी (Guha & Maheshwari) ने 1964-1966 में धतूरे के परिपक्व पराग कोश का संवर्धन कर यह बताया कि उसमें

कई भ्रूण बन जाते हैं। उन्होंने पहली बार पराग कणों से अगुणित भ्रूण बनना सिद्ध किया जिनसे अगुणित पौधे तैयार किए जा सकते हैं। आमतौर पर धतूरे के पौधे द्विगुणित होते हैं। यहाँ गुणित से आशय गुणसूत्रों की संख्या से है। सामान्य वयस्क की कायिक कोशिकाओं में जितने गुणसूत्र होते हैं, उनसे आधे ही जनन कोशिकाओं में होते हैं। इसलिए जनन कोशिकाओं को अगुणित और पौधे को द्विगुणित कहते हैं।

आइए अब ज़रा इस तकनीक की बारीकियों को समझें और फिर यह देखें कि क्या यह पुराने ज़माने में प्रायोगिक रूप से सम्भव हो सकती थी।

ऊतक संवर्धन हेतु एक ऐसी प्रयोगशाला की ज़रूरत होती है जो संक्रमण मुक्त हो – ठीक ऑपरेशन थिएटर की तरह। यहाँ ऊतक को कीटाणुमुक्त किया जाता है व पोषक माध्यम तैयार किया जाता है। प्रयोगशाला के एक अन्य कमरे में उचित तापमान, प्रकाश एवं आर्द्रता नियंत्रण की व्यवस्था होती है। यानी ये कमरे न सिर्फ वातानुकूलित बल्कि समुचित रूप से प्रकाशित भी होते हैं।

ऊतक संवर्धन के लिए चिमटी, चाकू, सुई, संवर्धन पात्र (जैसे फ्लास्क, परखनली, पेट्री डिश), ऑटोक्लेव, पराबैंगनी प्रकाश, उत्कृष्ट सूक्ष्मदर्शी एवं पीएच मीटर की आवश्यकता होती है।

पोषक माध्यम में सुक्रोज़, विटामिन, अमीनो अम्ल, लौह तत्व, नाइट्रोजन का स्रोत, मैग्नीशियम, कैल्शियम, निकल, मैंगनीज़, ज़िंक, कोबाल्ट, आयोडीन आदि खनिज लवण एक निश्चित मात्रा में मिलाए जाते हैं।

उल्लेखनीय है कि कीटाणु-रहित परिस्थितियाँ पैदा करने

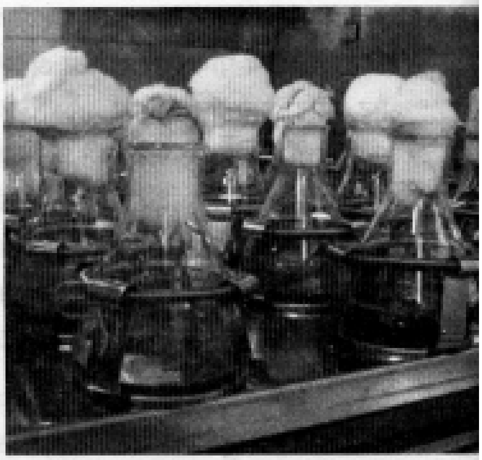

कल्चर फ्लास्क

महाभारत में इसी तरह की एक गाथा कौरवों की उत्पत्ति को लेकर आती है। कुन्ती को सूर्य के समान तेजस्वी पुत्र प्राप्त होने पर गान्धारी परेशान हो जाती है। हालाँकि उसे दो वर्षों से गर्भ था। वह अपने पेट पर प्रहार करती है जिससे उसका गर्भ टुकड़े-टुकड़े होकर गिर जाता है। इस पर व्यास ऋषि को बुलाया जाता है। वे इन सौ टुकड़ों को अलग-अलग पत्तों में लपेटकर घी से भरे सौ मटकों में रख देते हैं और गान्धारी से कहते हैं कि दो वर्ष बाद इन्हें एक-एक कर खोलना। इस प्रकार प्रत्येक मटके से एक कौरव का, अर्थात् सौ मटकों से कुल सौ कौरवों का जन्म होता है। महाभारत का यह प्रसंग निश्चित रूप से 4000-5000 वर्ष ईसा पूर्व का है। इस बात में कितनी सच्चाई है, यह फैसला आप स्वयं इस लेख को पढ़ने के बाद कर पाएँगे।

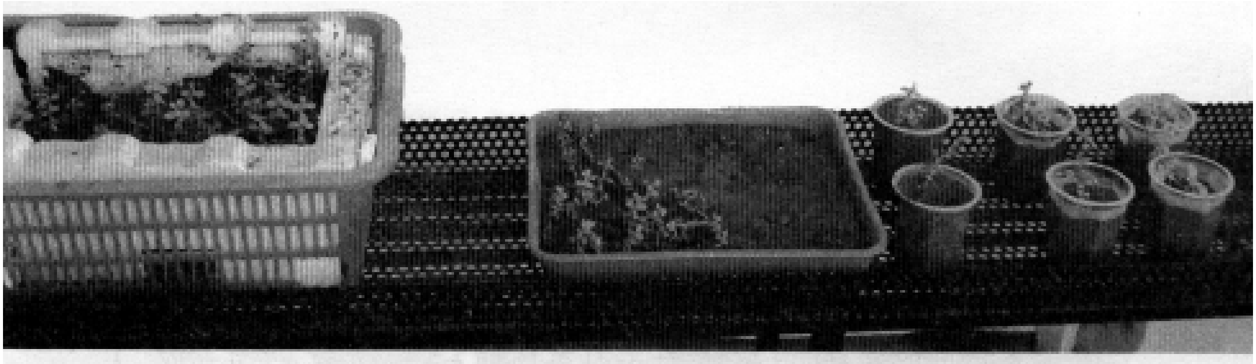

के लिए उपकरणों एवं पोषक पदार्थ को 120^0 सेल्सियस तापमान एवं 15 पौंड प्रति वर्ग इंच दाब पर 25-30 मिनट तक रखा जाता है। यह परिस्थिति घरेलू प्रेशर कुकर में बन जाती है। जिस पादप ऊतक का संवर्धन किया जाता है उसे भी पोषक पदार्थ पर रोपण के पूर्व कीटाणु-रहित करने हेतु टीपाल, मरक्यूरिक क्लोराइड, सिल्वर नाइट्रेट आदि पदार्थों से धोया जाता है।

संवर्धित हो रहे पौधे को 2000 से 3000 लक्स तीव्रता वाले कृत्रिम प्रकाश में रखा जाता है। इन्हें भलीभाँति श्वसन हेतु ऑक्सीजन मिलती रहे, इस हेतु इन्हें शेकर पर रखकर वायु प्रवाहित की जाती है। पोषक माध्यम की पीएच 5.6-5.8 के बीच रखी जाती है। यह थोड़ी अम्लीय परिस्थिति है। कोशिकाएँ रोपने के बाद पोषक माध्यम को इन्क्यूबेटर में 26^0 सेल्सियस पर रखा जाता है।

संवर्धन माध्यम पर कैलस यानी अविभेदित कोशिका पिण्ड विकसित होने के पश्चात उससे हॉरमोन द्वारा नए पौधे तैयार किए जाते हैं। इन्हें काँच के कमरों (ग्लास हाउस) में रखा जाता है और जलवायु-अनुकूलन के बाद खेत में लगा दिया जाता है। इस विधि से वर्तमान में केले, स्ट्रॉबेरी, गन्ना, शकरकन्द, सरसों, अलसी, धान, तम्बाकू, सोयाबीन के विषाणु मुक्त पौधे तैयार किए जा चुके हैं। वायरस आमतौर पर पौधे के शीर्ष तक नहीं पहुँचते। इसलिए शीर्ष से लिए गए ऊतकों से विकसित पौधे विषाणु मुक्त होते हैं।

ऊतक संवर्धन के माध्यम से कम समय में हज़ारों-लाखों पौधे प्रयोगशाला में तैयार किए जा सकते हैं। इसे सूक्ष्म प्रवर्धन तकनीक कहते हैं। इस तकनीक से गन्ना, बाँस, यूकेलिप्टस एवं केले के पौधे व्यापारिक स्तर पर तैयार किए जा रहे हैं।

इस लेख में ऊतक संवर्धन से सम्बन्धित चित्र महाराणा रणजीत सिंह महाविद्यालय की प्रो. मोनिका जैन के सौजन्य से।

किशोर पँवार

किशोर पँवार पेशे से शिक्षक हैं। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा उज्जैन, शाजापुर और मन्दसौर ज़िले के ग्रामीण अंचल में हुई। विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन से स्नातक और स्नातकोत्तर के बाद उन्होंने वायु प्रदूषण एवं पेड़-पौधों पर इसके प्रभावों पर शोध कार्य किया।

उनके शोध पत्र विभिन्न राष्ट्रीय तथा अन्तरराष्ट्रीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हुए हैं। वे लोक रुचि विज्ञान पर भी लगातार लिखते हैं। उनकी दो किताबें – *पेड़-पौधों का अनोखा संसार*, शिल्पायन प्रकाशन, दिल्ली से व *बिन पत्ती सब सून*, एकलव्य से प्रकाशित हुई हैं। स्कूल विज्ञान शिक्षण में रुचि रखने वाले श्री पँवार फिलहाल इन्दौर के होल्कर विज्ञान महाविद्यालय में वनस्पति विज्ञान के प्राध्यापक एवं पर्यावरण विभाग के प्रमुख हैं।

सम्पर्क: किशोर पँवार
142 ग्रेटर वैशाली, अन्नपूर्णा रोड, इन्दौर (मध्यप्रदेश) फोन: 0731-248 0374

भारत जमरा

भारत जमरा होल्कर विज्ञान महाविद्यालय, इन्दौर से वनस्पति शास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई कर रहे हैं। वे शौकिया चित्रकार हैं। उनके चित्र भारत भवन, भोपाल व अखिल भारतीय कालिदास समारोह में पुरस्कृत हुए हैं।

एकलव्य

एकलव्य एक स्वैच्छिक संस्था है जो पिछले कई वर्षों से शिक्षा एवं जनविज्ञान के क्षेत्र में काम कर रही है। एकलव्य की गतिविधियाँ स्कूल में व स्कूल के बाहर दोनों क्षेत्रों में हैं।

एकलव्य का मुख्य उद्देश्य ऐसी शिक्षा का विकास करना है जो बच्चे व उसके पर्यावरण से जुड़ी हो; जो खेल, गतिविधि व सृजनात्मक पहलुओं पर आधारित हो। अपने काम के दौरान हमने पाया है कि स्कूली प्रयास तभी सार्थक हो सकते हैं जब बच्चों को स्कूली समय के बाद, स्कूल से बाहर और घर में भी, रचनात्मक गतिविधियों के साधन उपलब्ध हों। किताबें तथा पत्रिकाएँ इन साधनों का एक अहम हिस्सा हैं।

पिछले कुछ वर्षों में हमने अपने काम का विस्तार प्रकाशन के क्षेत्र में भी किया है। बच्चों की पत्रिका *चकमक* के अलावा *स्रोत* (विज्ञान एवं टेक्नॉलॉजी फीचर्स) तथा *शैक्षणिक संदर्भ* (शैक्षिक पत्रिका) हमारे नियमित प्रकाशन हैं। शिक्षा, जनविज्ञान एवं बच्चों के लिए सृजनात्मक गतिविधियों के अलावा विकास के व्यापक मुद्दों से जुड़ी किताबें, पुस्तिकाएँ, सामग्री आदि भी एकलव्य ने विकसित एवं प्रकाशित की हैं।

वर्तमान में एकलव्य मध्य प्रदेश में भोपाल, होशंगाबाद, पिपरिया, हरदा, देवास, इन्दौर, उज्जैन, शाहपुर (बैतूल) व परासिया (छिन्दवाड़ा) में स्थित कार्यालयों के माध्यम से कार्यरत है।

इस किताब की सामग्री एवं सज्जा पर आपके सुझावों का स्वागत है। इससे आगामी किताबों को अधिक आकर्षक, रुचिकर एवं उपयोगी बनाने में हमें मदद मिलेगी।

सम्पर्क: books@eklavya.in
ई-10, शंकर नगर, बीडीए कॉलोनी, शिवाजी नगर, भोपाल - 462016

मूल्य: ₹ 60.00

A0545H

ISBN: 978-81-89976-78-1

9 788189 976781

एकलव्य

SRTT के वित्तीय सहयोग से विकसित